प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५१
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
देवीप्रसाद शर्मा
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

आपको यह स्मरण
और किसे
अर्पण करूं ?

हरिभाऊ

निवेदन

बापू गये, उनके विचार, जीवन-चरित्र व जीवन-सस्मरण विरासत के रूप मे हमारे लिए बाकी रह गये। विचारो की तो वे सदैव वृष्टि करते रहे उनके लेख, पत्र, व्याख्यानो के टिप्पण प्राय सब सुरक्षित है। व्यक्ति अपने जीवन की साधारण घटनाओ में जितना चमकता है उनसे जितनी शिक्षा, स्फूर्ति, मिसाल हमे मिलती है, जितना जादू की तरह असर होता है, उतना कोरे विचारो का या उपदेशो का नही। विचार व उपदेश वही असर करते है जो जीवन के साथ घुले-मिले होते है। अत बापू के अवसान के प्रथम धक्के से जब चित्त कुछ काम करने लगा, तो खयाल हुआ कि बापू की क्या पूजी अपने पास है जो अपने भी काम आये और दूसरो के भी। एक-एक करके बहुतेरी घटनाए आखो के सामने दौड गई बापू के २७ साल सहवास व सम्पर्क की घटनाए जिनका साक्षी होने का सौभाग्य मुझे पूर्व पुण्य से मिला। उनके जीवन की कोई भी घटना, कोई भी व्यापार, अर्थ, उपदेश, नसीहत से खाली न था। जो घटनाए यहा प्रस्तुत की गई है वे कोई-न-कोई विशेषता, शिक्षा, उद्बोधन लिये हुए है। बापू के ये पुण्य-स्मरण हमारे जीवन को पवित्र व आशामय बनावे।

इनमे बापू के सवाद उन्हीकी भाषा मे देना मेरे लिए असभव था। मैने न तो कोई नोट्स रखे, न डायरी ही। अतः आशय बापू का है व भाषा मेरी। इससे घटनाओ का कालक्रम भी ठीक-ठीक नही सध पाया है। इन घटनाओ का महत्व कालक्रम मे उतना नही जितना इनके प्रभाव मे है। यह इतिहासात्मक या चरित्रात्मक नही, सस्मरणात्मक है और लिखते समय भगवान् कृष्ण के प्रति गोपियो की यह मार्मिक व सार्थक उक्ति मुझे सदैव स्फूर्ति देती रही है

तव कथामृत तप्त जीवन
कविभीरीडित कल्मषापहम् ॥

श्रवण मगल श्रीमदाततम्
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥९॥

[तेरी कथा क्या है, अमृत की धारा है। तप्त लोगो को जीवन, शान्ति व शीतलता देती है। पाप नाशिनी है। उसके सुनने मात्र से मनुष्य का मगल होता है। इसीसे कविजन उसका गान करते फिरते है। वे धन्य है जिन्हे उसके गान-प्रचार का सद्भाग्य प्राप्त होता है।]

महिला शिक्षा सदन,
गाधी आश्रम
हटूडी (अजमेर)
शीतला सप्तमी, २००७

हरिभाऊ उपाध्याय

विषय-सूची

बापू के आशीर्वाद

: १ :

बापू की गोद में

१९२१ ईसवी, जूनी इन्दौर का एक कुआ। अप्रैल मे हम कुछ मित्र जिनमे भाई वैजनाथजी महोदय भी थे, शाम को घूमने निकले। हम लोग अक्सर घूमने जाते व अपने भावी जीवन के सपने रचते। वैजनाथजी उन दिनो कालेज में पढते थे। उनसे मेरा परिचय हुआ ही था। हम दोनो एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो रहे थे। दोनो के विचार और भावनाए एक ही दिशा मे वहती दिखाई देती थी। प्राय समान गुणशील थे।

वाते चल पडी मेरे वारे में। मैने इदौर से 'मालव-मयूर' नामक एक मासिक पत्र निकालने का प्रयत्न किया था, जोकि वहा के तत्कालीन प्रधान मन्त्री की 'कृपा' से असफल हो गया था। 'मालव-मयूर' के द्वारा मै मालव-प्रदेश मे ही नही, सारे मध्य-भारत में राष्ट्रीय व राजनैतिक जागृति करना चाहता था। अत इस निराशा से मुझे वडी टेस लगी थी। अव किसी देशी रियासत से तो पत्र निकालना असभव मालूम होता था। इदौर से हमे कुछ करने की आशा थी, सो चूर-चूर हो गई। अत खण्डवा से एक साप्ताहिक निकालने की योजना मन में वन रही थी। इसके मूल में शुद्ध सात्विक सेवा-भाव नही था। इदौर के प्रधान मन्त्री की 'खवर लेना' भी था। इसी सम्वन्ध में हम लोगो के बीच बातचीत

हो रही थी। मित्रो को ऐसा लगता था कि मुझमे कुछ चमक है। पर हम अनुभव कर रहे थे कि इन्दौर का वातावरण उस चिनगारी पर राख डालने का काम कर रहा है। आसपास की दूसरी रियासतों से इन्दौर फिर भी गनीमत था। वहा से एक प्रगतिशील (आज के अर्थ में नही) साप्ताहिक (मराठी-हिन्दी) 'मल्लारि मार्तण्ड विजय' सरकार की ओर से निकलता था। इतना होते हुए भी जब एक स्वतन्त्र मासिक को नही निकलने दिया तो मुझ-जैसे एक भावनाशील युवक का दिल टुकडे-टुकडे हो गया। यह चोट खण्डवे से पत्र निकालने के लिए आतुर हो रही थी। मेरे मित्र यह मानते थे कि मै इस काम को कर तो सकता हू, क्योकि अपने 'औदुम्बर' के अनुभव के अलावा मै 'सरस्वती' में भी तीन साल काम कर चुका था। इसी बातचीत के दौरान म किसीने कहा, "तुममें चमक तो है। तुम्हारे सम्पर्क मे जब कभी आते है तो अपने से तुममें कुछ विशेषता अनुभव करते है।" यह एहसास तो मुझे तब भी होता था, आज भी होता है। बडे-से-बडे व्यक्ति के साथ रहते हुए भी, उनके प्रति अत्यन्त विनम्र भाव रखते हुए भी, अपनी कुछ विशेषता का भाव मेरे मनसे तिरोहित नही होता। मुझे कई बार सन्देह होता है कि यह अभिमान का कोई रूप हो। किसीकी अच्छाई को समझ लेने व दृढता से पकड रखने की खासियत मुझमें बहुत है। किसी भी व्यक्ति से जब मै मिलता हू तो थोडे ही समय में उसमे घुल-मिल जाता हू। उस पर मेरा कुछ प्रभाव तेज नही पडने लगता है। उस 'चमक' या 'विशेषता' का इसी तरह का विश्लेषण मेरा मन करता रहता है।

मैंने कहा, "यहा का वातावरण तो अब मेरे लिए दमघोटू हो रहा है। जो कुछ बाहर काशी, प्रयाग, कानपुर रहकर कमाया है, उसे बढाना तो दूर, कही यहा खो न दू। जैसे दूसरे लोग यहा के वातावरण मे आकर दब गये, कही मै भी ऐसा न हो जाऊ!"

"ऐसा होना तो नही चाहिए। तुममें कुछ और ही बात दीखती है।"

"मेरे मन में बडी अशान्ति व उथल-पुथल मच रही है। आगे

की कोई तस्वीर नही बन पाती है। इससे जी भारी-भारी रहता है। आप कहते हैं कोई विशेषता है तो फिर ऐसा अनुभव क्यो हो रहा है? या तो आपका यह खयाल गलत है कि कोई चमक है या फिर उसके अनुकूल कोई लक्षण भी तो दीखना चाहिए।"

"हमें तो ऐसा ही लगता है कि कोई अवसर मिलना ही चाहिए।"

"हा, तभी यह सच साबित होगा कि कोई विशेषता है। भगवान् विशेषता दे, परन्तु उसके उपयोग के लिए अवकाश या अवसर न दे, यह हो नही सकता।"

× × ×

शायद इसी बातचीत मे यह तय हुआ कि खण्डवा से एक ऐसा साप्ताहिक पत्र निकालें, जिसमे लेख-टिप्पणी तो महात्माजी के 'यग इडिया' से लिये जावें व दूसरी हम अपने काम की सामग्री सजा ले। इस साप्ताहिक की योजना ने ही मुझे महात्माजी, स्वर्गीय भाईजी (जमनालालजी) व साबरमती आश्रम तक पहुचाया। मैं इस अखबार की योजना लेकर बम्बई महात्माजी की सेवा मे पहुचा। वहां श्रद्धेय भाईजी की सलाह से तय हुआ कि पत्र खडवा से न निकालकर अहमदाबाद से निकाला जाय व वह सिर्फ 'यग इडिया' व 'नवजीवन' का अनुवादमात्र रहे। इस सुअवसर को मैंने अपने जीवन का अहोभाग्य ही नही, महान शिक्षादायक भी माना है। खण्डवा से यदि पत्र निकलता तो मेरी बदले की भावना जरूर उसमें काम करती व कोई असात्विक फल लाती। भगवान को मुझे उससे बचाना था। अत उसने महात्माजी की गोद में भेज दिया।

साप्ताहिक की योजना बनाकर मैं बम्बई महात्माजी के पास पहुचा। वह उन दिनो प्रिंस ऑव वेल्स के स्वागत-बहिष्कार के आन्दोलन मे जी-जान से जुटे हुए थे। गामदेवी के मणिभवन में उनका डेरा था। श्री देवदास गाधी से सबसे पहले भेंट हुई। उन्होने बताया कि बापूजी को आपका पत्र मिल गया है। उसका उनपर अच्छा असर हुआ है। आपका खुशखत भी उनको पसन्द आया है।

मैं जब महात्माजी के कमरे में घुसा तो वह एक छोटी-सी मसनद के सहारे गादी पर बैठे हुए थे। खुला बदन था। लम्बी धोती पहने थे। उन दिनों वह धोती, कुर्ता और टोपी पहनते थे। कमरा मिलने-वालों से घिरा हुआ था। मैं जब पहुंचा तो मौ० मुहम्मदअली आये और अपना चोगा बिछाकर उस पर बैठ गये। आंदोलन की रिपोर्ट महात्माजी को सुनाने लगे। वह महात्माजी को 'सरकार' सम्बोधन करते जाते थे और इस नम्रता से उनसे बातचीत करते थे, मानो कोई सिपाही अपने सरदार से या शिष्य अपने गुरु से बात कर रहा हो। उनकी आंखों व हाव-भाव से महात्माजी के प्रति उनके मन में बहुत स्नेह और श्रद्धा टपकती थी। उन दिनों अली-बन्धु मुसलमानों के शेर समझे जाते थे और कांग्रेस के नेताओं में भी उनकी गिनती होती थी। किसी मुसलमान का, सो भी एक मुस्लिम अगुआ का, एक हिन्दू के प्रति इतने अदब का मेरा यह पहला ही अनुभव था। उस दृश्य को देख मैं गद्‌गद् हो गया। आज के हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के इस अन्धकार में वह दृश्य प्रकाश-किरण की तरह मेरी आंखों में छा जाता है।

मुझसे गांधीजी ने कहा, "मेरा जवाब तुम्हें मिल गया है न ? तुम्हारी योजना मुझे पसन्द है। जमनालालजी से मेरी बातचीत हो गई है; लेकिन तुम अहमदाबाद से पत्र निकालो तो अच्छा है। तब मैं ज्यादा देख सकूंगा।" मुझे जहां तक याद है, जमनालालजी को भी मैंने पहले-पहल वहीं देखा। अहमदाबाद से पत्र निकालना तय हुआ। जमनालालजी ने श्री शंकरलाल बैंकर से मेरी मुलाकात करादी और वह वहीं दौरे पर चले गये। पन्द्रह-बीस रोज मुझे उसी सिलसिले में बम्बई रहना पड़ा। बम्बई भी मैं पहली ही बार आया था। उसका नाम मैंने 'ए सिटी आव होटल्स एन्ड साईनबोर्ड्‌स' रखा।

: २ :

पुराने संस्मरण

जहातक मुझे याद है, उससे पहले महात्माजी को मै तीन वार देख चुका था। पहली वार १९१५ में लखनऊ काग्रेस में। दूसरी वार, शायद उसी साल, चम्पारन से लौटते हुए कानपुर स्टेशन पर। तीसरी वार इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे। १९१८ मे उस समय के मेरे सस्मरण इस प्रकार है :

"दिसम्वर १९१६ में लखनऊ कुछ दिनो तक राष्ट्रभक्तो के लिए तीर्थ-स्थान हो गया था। मैने पहले-पहल यही गाधीजी के दर्शन किये। उन दिनो लोग उन्हे 'कर्मवीर' कहते थे। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह ने देश का ध्यान उनकी ओर खीच दिया। भारत की सेवा करने के इरादे से वे यहा आ चुके थे। उनके दर्शन की लालसा से मैने कई धक्के खाये। कई दिन तक दौड-धूप करने के वाद आखिर हिन्दू-सभा के मण्डप में दूर से उनके दर्शन हुए। प्रथम ही दर्शन ने मेरा हृदय खीच लिया। वह भव्य दृश्य आज भी मेरी आखो में नाच उठता है। हिन्दू-सभा व काग्रेस में जो उनके दस-पाच चुने हुए वाक्य मेरे कानों में पडे व जिस गभीरता व शान्ति के साथ उनके मुह से प्रकट हुए उससे उनके आत्मतेज और आत्मविश्वास का सिक्का मेरे हृदय पर जम गया। तव से 'लोकमान्य' के साथ ही 'कर्मवीर' ने भी मेरे हृदय के एक कोने पर अधिकार कर लिया।

"इसके वाद महात्माजी के दर्शन कानपुर स्टेशन पर किये। निलहे गोरो के अत्याचारो से बिहार की प्रजा को वचाने के उद्देश्य से महात्मा-

जी के प्रयत्नस्वरूप एक कमीशन की स्थापना हो चुकी थी। महात्माजी किसी जरूरी काम से पजाब मेल से देहली होते हुए गुजरात जा रहे थे। सैकिड क्लास के एक दरवाजे के ऊपर एक नगे सिर और नगे पैर वाली मूर्त्ति को देखा। बदन पर एक मोटा कुरता, कमर में मोटी छोटी धोती। उस समय उनके चेहरे पर जो निश्चय और तपस्या का तेज दिखाई दिया वह दर्शको के लिए चम्पारन के उज्ज्वल भविष्य का काफी सूचक था। फिर शब्दो द्वारा जब उन्होने अपना कठोर निश्चय प्रकट किया कि या तो निलहो के अत्याचारो से प्रजा की रक्षा होगी या ये हड्डिया चम्पारन में रह जायगी, तब तो मेरी आखो मे आसू भर आये। इतने निर्भय व नि शक वचन अपने कानो से सुनने का वह मेरा पहला ही अवसर था।

"१९१८ की फरवरी मे इन्दौर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का आठवा अधिवेशन था। महात्माजी सभापति बनकर आये। अब वे 'महात्मा गाधी' हो गये थे। खेडा जिले के सत्याग्रह की ओर सारे देश की आखे लग रही थी। इस समय महात्माजी खासे 'कैदी' बने हुए थे। उनका वही पहनावा आज भारत का राष्ट्रीय पहनावा हो गया है। चेहरा शरीर की दुर्बलता की गवाही दे रहा था, पर उत्साह व तेज देखकर लोग दग रह जाते थे। खेडा-सत्याग्रह का काम अधूरा छोड कर वह इदौर आये थे। सम्मेलन के अधिवेशन, विषय-समिति, सार्व-जनिक भाषण तथा इतर कार्यों मे दिन-रात व्यस्त रहते हुए भी उनके शरीर व दिमाग को थकते हुए किसीने न देखा, विषय-समिति में मैने देखा कि उनकी आकलन-शक्ति अदभुत है। थोडे शब्दो और हाव-भाव से मन का आशय समझ लेने में वे बडे सिद्धहस्त है। बडे-बडे विद्वान, कार्यकर्त्ता व पदवीधर लोग वहा उपस्थित थे, पर ऐसा मालूम होता था कि सब माहत्माजी के सामने अपने विचार प्रकट करते हुए फीके मालूम होते। महात्माजी मानो किसी अन्तर्यामी की तरह एक दृष्टिपात मे उनके हृदय का भाव समझकर नीचे देखने लग जाते थे। उस समय उनकी दृष्टि में जो भेदकता मैने देखी उसने

मुझे उनके महापुरुष होने का निश्चय करा दिया। अन्तिम दिन उन्होंने जो उपसहारात्मक भाषण किया उसने तो सब लोगो का मन हर लिया और प्राय: प्रत्येक के घट में उनकी मूर्ति प्रतिष्ठित हो गई।"

इस समय गाधीजी का सितारा तेज हो रहा था। नागपुर काग्रेस में देशबन्धुदास पर भी उनकी विजय हो चुकी थी। लालाजी और पडित मोतीलालजी तो पहले ही उनके असर में आ चुके थे। इस समय वह काग्रेस के एकछत्र नेता बन गये थे। स्व० केलकर के नेतृत्व में महाराष्ट्र मे अलवत्ता विरोधी वातावरण पनप रहा था। यह साफ दीख रहा था कि काग्रेस और हिन्दुस्तान को महात्माजी से एक नया प्रकाश और बल मिल रहा था। निहत्थे हिन्दुस्तान को इतने बडे-बलाढ्य अंग्रेजी साम्राज्य से लडने का एक नया हथियार सत्याग्रह मिल रहा था। नेताओं की समझ मे तो पूरा-पूरा नही आता था कि अहिंसा-बल या आत्मबल से कैसे एक महान शस्त्र-सज्जित राष्ट्र को पछाड सकेंगे ? परन्तु दक्षिण अफ्रीका में हुए सत्याग्रह-विजय का नमूना उन्हें स्फूर्ति दे रहा था। ऐसे समय में युवराज के स्वागत-बहिष्कार पर चर्चा करने के लिए काग्रेस-महासमिति की एक बैठक हुई थी।

: ३ :

रामराज्य में

इन्दौर में रहते हुए मैंने स्वप्न में भी कल्पना नही की थी कि मुझे महात्माजी के आश्रम उनके 'रामराज्य' मे रहने का कभी सौभाग्य मिलेगा। वास्तव में पूर्वजो के पुण्य और बडो के आशीर्वाद का ही फल था। अत अहमदावाद से पत्र निकालने का सुझाव मानो किसी भूखे भिखारी के सामने सोने का परोसा थाल आ गया हो। मैंने गद्-गद् हो कम्पित हृदय से भगवान् से प्रार्थना की, "प्रभो! मेरी सब कमजोरियां दूर करना और मुझे इस पवित्र आश्रम मे रहने योग्य

बनाना।" एक-एक कर अपनी सारी कमजोरिया मेरी निगाह में दौड गई। काशी विद्याध्ययन के लिए जाते समय जैसा मैंने सकल्प किया था कि मैं एक आदर्श विद्यार्थी का जीवन व्यतीत करूगा, वैसा ही सकल्प इस समय भी किया कि मुझसे कोई ऐसा आचरण या व्यवहार न होगा जिससे आश्रम की महिमा को बट्टा लगे, महात्माजी को दुख हो, उनकी आख तक को मुझे उलहना देने का अवसर आवे।

बम्बई से इन्दौर लौटने के बदले मैं सीधा अहमदाबाद गया। बात तय हो जाने या कार्य का निर्णय हो जाने के बाद फिर उसके अमल में ढील होना मुझे बरदाश्त नही होता। फिर यह भी अन्देशा था कि यह स्वर्ण-अवसर कही हाथ से निकल न जाय। वहा स्वामी आनन्द से काम पडा। वे नवजीवन-सस्था के तेजस्वी अधिकारी थे। कई दिनो तक मैं अहमदाबाद ही रहा, क्योकि वही प्रेस और अखबारो का आफिस था। मेरा जी बार-बार करता था कि आश्रम देखू। लेकिन वह था वहा से पाच मिल दूर और शुरू में काम भी इतना अधिक रहता था और कठिनाइया इतनी थी कि मुझे सयम से ही काम लेना पडा। किसी को स्वर्ग के पास तो पहुचा दिया हो मगर उसमें प्रवेश करने का अवसर न मिलता हो तो जो दशा उसके मन की हो सकती है वही मेरे मन की हो रही थी। परन्तु मेरा धर्म एक सिपाही का धर्म था। सिपाही का एक-मात्र कर्त्तव्य है अपनी ड्यूटी पर डटे रहना।

महात्माजी का नाम जैसा बडा था, उतनी ही निराशा मुझे उनके 'नवजीवन-कार्यालय' को देखकर हुई। वह एक एकान्त और गन्दी गली और छोटे-से मकान में घिच-पिच था, जिसमें दम घुटने लगता था। लेकिन जैसे कीचड में से कमल उपजता है और माता के रक्तपूरित गर्भ से सुन्दर सपूत पैदा होता है उसी तरह उस अधेरे और मैले-कुचैले कार्यालय से तरुण-भारत को 'नवजीवन' मिल रहा था और भारत को 'यग इडिया'।

आश्रम का ध्यान आते ही दिल उसकी ओर उसी तरह झपटने और उछलने लगता है जिस तरह बछडा अपनी माता के रम्हाने का

शब्द दूर से सुनते ही उछल-कूद करने लगता है। आश्रम मेरे लिए उस माता के समान रहा है जिसने मुझे न केवल नवजीवन दिया, बल्कि अपना अमृत-स्तन-पान भी कराया। ससार में यदि ऐसा कोई स्थान हो सकता है, जिसके नाम का असर मुझपर जादू का-सा होता है तो वह है साबरमती का आश्रम।

यह आश्रम वह बैटरी था, जहा से केवल भारत को ही नही, सारे दुनिया के जिज्ञासु जनो को नव चैतन्य, नव सदेश, नव आदर्श, नव प्रकाश की विद्युत् किरणें प्राप्त हो रही थी। सारी दुनिया के मनस्वी लोग इस बीहड मे बसे, कडी धूप मे तपे, आश्रम की ओर आशा-भरी दृष्टि से देखते थे और जो कोई यहा आते थे वे यहा के देवता, यहा की विभूति, यहा के बापूजी के थोडे ही ससर्ग मे अपने को भाग्यवान् और समृद्ध बनाकर जाते थे। बहुतेरे शकाशील यहा आये हैं और श्रद्धा का प्रसाद लेकर गये है और अपने सहवासियो मे उसे बाटते रहे हैं। प्रखर बुद्धिशाली यहा आये है और उनकी बुद्धि ने हृदय के गुणो को चूमा है एव हृदय ने बुद्धि पर विजय प्राप्त की है। निराश, दुखी, शोकित, सतप्त और पतित जनो को तो यह अपना ठौर मालूम होता था। बुद्ध और ईसा के बाद यदि किसीने उनको अपना प्यारा कहा है, अपना बन्दा समझा है, उनकी करुण दशा पर किसीके हृदय मे तीर चुभे है, किसीकी आखो से दुलार बरसा है, किसीकी आत्मा को घोर व्याकुलता हुई है तो वह आपको इसी आश्रम के एक झोपडे मे मिलेगी। राम की मर्यादा और कृष्ण का योग, कौशल और आकर्षण, बुद्ध का वैराग्य और दया-धर्म, ईसा का कष्ट-सहन, हरिश्चन्द्र का सत्य-पालन, भीष्म की प्रतिज्ञा और अर्जुन का रण-कौशल इनका उचित सम्मिलन बीसवी सदी में यदि कही मिल सकता था तो वह इसी आश्रम के एक कोने मे। देश के गरीबो की हड्डियो मे थोडा मास, नसो मे खून की बूदें और पेट मे दो रोटी डालने के लिए दुनिया मे आजतक यदि किसीने लगोटी लगाई है, चर्खा-यज्ञ का आविष्कार और प्राणात होने की अवस्था तक इसका अनिमेष पालन यदि किसीने

किया है, अपने लिए नही, शिक्षित और बुद्धिशाली कहलाने वाले अपने मुट्ठीभर साथियो के लिए नही, बल्कि दुनिया के एक गरीब-से-गरीब और भिखारी-से-भिखारी के लिए स्वराज्य का कार्यक्रम बनाने वाला, उसीके लिए जीने और उसीके लिए मरने वाला, यदि कोई था तो वह साबरमती का बूढा कृश कलेवर तपस्वी ही। मेरे ही नही, मुझ जैसो के ही नही, बल्कि मेरी राय मे सारे भारत के बापू के इस आश्रम में रहने का अवसर जिसे मिला वह अपने सौभाग्य पर जितना नाज़ करे थोडा है। इस खुशी के बदले मे कि मेरा जन्म महात्माजी के युग मे हुआ, यही नही, उनके युग में मै जीवित हू, और इससे भी बढकर उनके चरणो में रहने का पुण्य मिला और उनके जीवन-काल मे यत्किचित सेवा से अपने जीवन को कृतार्थ किया, अपने जीवन में कुछ आशा, कुछ प्राण और कुछ श्रद्धा का अनुभव किया, यदि मुझे सदेह स्वर्ग मिलता हो तो मेरे नजदीक उसका कुछ मूल्य नही। भारत मे इस समय हजारो नही, लाखो लोग ऐसे होगे जिन्हे आश्रम के इस ब्रह्मा के चुम्बक का अनुभव हुआ है और जो मेरी तरह अपनेको धन्य मानते है।

जबतक कुजी हमारे हाथ नही लगती तबतक हम किसी भवन या उपवन के सच्चे सौन्दर्य का स्वाद नही ले सकते। आश्रम का भी अत -सौन्दर्य देखने के लिए कुजी हाथ लग जाने की बहुत जरूरत है। आश्रम के विधाता आत्मार्थी, मुमुक्षु, अतएव अतर्मुखवृत्ति वाले थे। इसलिए आश्रम का जीवन बहती हुई नदी के सदृश नही, बल्कि गहरे कुए की तरह अथवा चारो ओर दुर्गम पहाडो से घिरे गम्भीर तालाब की तरह था। बाहरी झाकी को, ऊपरी काम को देखने और उसकी कदर करनेवाले भाइयो को यदि आश्रम-जीवन बहुत अंश में अपील न करता हो तो इसमे कोई आश्चर्य नही। ईश्वर की कृपा समझना चाहिए जो मुझे यह कुजी थोडे श्रम में मिल गई।

: ४ :

सर्वोदय की प्रयोगशाला

मेरे खयाल मे आश्रम महात्माजी के सोचे हुए स्वराज्य या 'रामराज्य' या सर्वोदय की एक छोटी-सी प्रयोगशाला है। महात्माजी की आदर्श समाज-व्यवस्था में किसी सरकार को अर्थात् शासक-मडल को स्थान नही है। समाज में हुकूमत करनेवालो की आवश्यकता का होना वे समाज की त्रुटि या कमजोरी मानते हैं। उनकी राय मे समाज की सुविधा के लिए एक व्यवस्थापक-मडल का होना काफी है। परन्तु जबतक समाज के सभ्य स्वयं ही अपने बनाये नियमो का पालन न करेंगे, पच की मारफत अपने हर तरह के झगड़ो को न मिटा लेंगे और एक-दूसरे को नुकसान पहुचाने, एक-दूसरे से नाजायज फायदा उठाने के बजाय एक-दूसरे के हित का पूरा-पूरा खयाल न रक्खेंगे, एक-दूसरे की सहायता न करेंगे, अपना-अपना भला सोचने के बजाय एक-दूसरे का भला सोचने की आदत न डालेंगे, तबतक समाज में ऐसी सस्था और ऐसे लोगो की जरूरत रहेगी जो अपनी सत्ता के बल पर लोगो को सुख-शान्ति से रहने और अपनी उन्नति करने पर मजबूर करे। अपने और समाज के हित के कामो को स्वय खुशी-खुशी करने के बजाय किसी सस्था या व्यक्ति के दण्ड के भय से मजबूर होकर करने में मनुष्य का कुछ भी गौरव नही है, परन्तु जबतक मनुष्य इस सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ नही लेता, अपने गौरव का यथार्थ मूल्य आकना सीख नही लेता और इसमें अपना अपमान समझने नही लगता, तबतक सत्ताधारियो की जगह समाज में जरूर रहेगी। और

समाज की यह आदर्श अवस्था यदि अच्छी चीज है, यदि व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए ऐसी आदर्श अवस्था अनुकूल और सहायक है तो समाज के जिन धुरीणो ने इस बात को पहचान और समझ लिया है उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे समाज को उस दिशा मे ले जाने की, समाज मे उन गुणो की वृद्धि करने की चेष्टा करें। यह काम तभी कुछ सफल हो सकता है जब इस आदर्श को पसन्द करने वाले लोग एकत्र होकर, एक जगह रहे और अपनी मनचाही आदर्श अवस्था को ध्यान मे रखकर तदनुसार अपने और अपने साथ रहने वालो के जीवन को बनाने का यत्न करे। जहातक मैने समझा है, महात्माजी ने सत्याग्रह-आश्रम की स्थापना करके समाज को अपने आदर्श की दिशा दिखाने के प्रयोग का आरम्भ किया था।

आश्रम मे उस समय कोई २५० स्त्री पुरुष और बालक रहते थे। बालको की शिक्षा के लिए एक विद्या-मदिर भी था। आश्रम-वासियो के उपयोग के लिए एक गोशाला और कोठार भी था। दुग्धशाला और चर्मालय भी खुला था, जो कि गो-रक्षा के प्रयोग-रूप था। खेती और कताई-बुनाई तो थी ही। सुबह-शाम की प्रार्थना एक आध्यात्मिक भोजन और सामाजिक सम्मेलन का काम देती थी। इन सब कामो के लिए वहा कोई शासक सस्था नही, सिर्फ व्यवस्थापक मडल था, जिसको आश्रमवासियो ने चुनकर बनाया था। आश्रम के नियमो और व्यवस्थापक-मडल के प्रस्तावो का पालन लोग अपनी जिम्मेदारी समझकर करते थे, किसी सत्ता या दड के भय से नही। दड का स्थान वहा प्रायश्चित्त ने लिया था। प्रायश्चित्त स्वय किया जाता है दड दूसरा देता है। वहा आश्रम में अपनी भूल मालूम होने पर स्वय प्रायश्चित्त करते थे और प्रायश्चित्त के बाद वे आश्रम में अप्रतिष्ठा की दृष्टि से नही देखे जाते थे। कोई दूसरा उन्हे प्रायश्चित्त करने पर मजबूर नही करता था। मुखिया अथवा व्यवस्थापक-मडल उनको उनकी भूल बता देता था। छोटे-छोटे बालको और विद्यार्थियो तक को ऐसी आदत डालने की कोशिश की जाती थी कि उनकी

शिक्षण-प्रणाली मे न दड को स्थान था, न लोभ को। आश्रमवासी कोई काम न दड के भय से करना पसन्द करते थे और न पारितोषिक के प्रलोभन से। वे अपना कर्तव्य समझकर, फिर वह चाहे कडुआ हो या मीठा, उसे करना पसन्द करते थे। वहा विचार करने और उसे प्रकट करने की पूरी स्वाधीनता थी, पर साथ ही बुरे विचार मन में न आने देने तक की सावधानी रखने का प्रयत्न किया जाता था और ऐसा होने पर प्रायश्चित्त करने में देरी नही की जाती थी। आश्रम-वासी जितने ही अपने को स्वाधीन समझते थे, उतने ही सयमशील रहने का भी प्रयत्न करते थे। स्वाधीनता के भाव की वृद्धि के साथ-ही-साथ सयम के भाव की भी वृद्धि करना जरूरी है। आश्रम में स्त्री-पुरुषो के कर्तव्यो, कार्यो और अधिकारो मे पूरी समानता है। कोई भी स्त्री किसी आश्रमवासी से स्वतन्त्रता के साथ मिल सकती है, बातचीत कर सकती है। साथ रहकर काम कर सकती है, परन्तु इस जिम्मेदारी और भाव के साथ रहने की कोशिश करते थे कि हम भाई-बहन है। जो मनुष्य जितना ही अधिक सयमी होता है, वह उतना ही अधिक स्वाधीनता का अधिकारी अपनेको मानता है। दड और प्रलोभन ये सरकारो के मुख्य शस्त्रास्त्र होते है। इन दोनो से बचने की कोशिश आश्रम मे की जाती थी। सहिष्णुता, उदारता, सेवा, सहयोग का भाव, स्वावलम्बन, सादगी, सरलता, सचाई, तेजस्विता-जात-नम्रता, ये वे मुख्य गुण हैं जिनके विकास पर ही समाज राजसत्ता के बोझ से बच सकता है। एक और वृत्ति भी है जिसके अभाव को राजसत्ता की नींव कहना चाहिए। वह है दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्य का तो यथावत् पालन करना, परन्तु यह न चाहना कि हम तभी अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे जब दूसरा भी हमारे प्रति अपने कर्तव्य का पालन यथावत् करेगा। हमारा काम है अपने कर्तव्य का पालन करना। दूसरा यदि नही करता है तो वह मनुष्य और ईश्वर के सामने दोषी है। उसकी देखा-देखी यदि हम भी उस दोष को अपनाने लगे तो दोनो मे मनो-मालिन्य और सघर्ष पैदा होगा और यही स्थिति शासक-मडल को जन्म

देनेवाली होती है। आश्रम के संचालकों ने इसको खूब समझ लिया था और इसलिए वे जो कुछ करते थे निरपेक्ष होकर करना चाहते थे। सापेक्ष्य भाव को वे वणिक्-वृत्ति मानते थे। आदर्श समाज और व्यवस्था के लिए ब्राह्मण-वृत्ति की आवश्यकता है। ब्राह्मण-वृत्ति का अर्थ है ज्ञान, त्याग और सेवा। इस वृत्ति को प्राप्त करने की चेष्टा आश्रमवासी करना चाहते थे।

शोहरत और बनावट सच्चे और पुख्ता काम के भयंकर शत्रु हैं। इसलिए आश्रमवासी इन दोनों से बचना चाहते थे और इसीलिए बाहरी बातों को देखनेवाले आश्रम की सादगी में विशेषता नहीं पाते थे। पॉलिश की हुई चीजों को देखने की जिसे आदत पड़ रही है उसे खान का निकला स्वाभाविक शुद्ध सुवर्ण एकाएक नहीं जंच सकता। आश्रम में अच्छे संस्कार तो माने जाते थे, पर उनको लोकाचार का रूप नहीं दिया जाता था। वे उनकी उन्नति के लिए, विकास के लिए किये जाते थे, दुनिया की नजर में भला और बड़ा बनने के लिए नहीं। आश्रमवासी बालकों, अन्य सभ्यों में शहर के रहनेवाले लोगों में जो बनावटी व्यवहार-चातुर्य दिखाई देता है, उसकी जो कमी बाज़ लोगों को खटकती है, उसका कारण है आडम्बर और मिथ्या लोकाचार की ओर अरुचि।

आश्रम-जीवन का अध्ययन करने के लिए, उसका मर्म समझने के लिए आश्रम के हृदय को समझना जरूरी है, उसकी तह में गोते लगाने की आवश्यकता है। चर्म-चक्षुओं से नहीं, अन्तरात्मा के चक्षुओं से देखने की यह चीज थी। मैंने इसी तरह उसे देखने का यत्न किया है।

: ५ :

बापू की महिमा

जब मैं पूज्य बापू के चरणों में पहुंचा तब युवराज के स्वागत-बहिष्कार-आन्दोलन की धूम थी। विदेशी कपड़ों की होली पहली बार

बम्बई मे जलाई गई थी और जगह-जगह होलियो का ताता लगने लगा था। गाधीजी एक तूफानी जीव थे। उन्ही दिनो ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा ने एक जगह कहा था कि यह महात्मा अद्भुत आदमी है। नाम शान्ति का लेता है और जहा कही जाता है वहा अशान्ति मचाता है। यह एक अर्थ में ठीक ही था; क्योकि महात्माजी शुरू से आखिर तक क्रातिकारी थे। जीवन का कोई अग या क्षेत्र ऐसा नही था जिसे उन्होने छुआ न हो, जिसमे उन्होने क्रान्ति की प्रेरणा न की हो, उथल-पुथल न मचाई हो। अत हर किस्म के लोगो का ताता उनके पास लगा रहता था। विरोधी और अनुयायी दोनो उनको घेरे रहते थे। वे समय की पावन्दी के साथ ही मर्यादा-पालन का बडा खयाल रखते थे। शिष्टता व नम्रता के तो वे अवतार ही थे। अपनी वात पर दृढ रह-कर भी सामनेवाले के प्रति अत्यन्त सभ्यता, सौजन्य व सद्भाव रखना उनका स्वभाव-धर्म हो गया था। उन्ही दिनो एक दिन बम्बई मे कुछ पारसी महिलाए महात्माजी से मिलने आईं। मणिभवन का उनका छोटा-सा कमरा भेंट करनेवालो से भरा हुआ था। महात्माजी को जल्दी ही कही शायद किसी सभा मे जाना था। पारसी वहनो को वे स्वदेशी व खादी का महत्व समझा रहे थे। इतने मे उस सभा से सवधित कोई भद्र पुरुष उन वहनो के वीच में घुसकर महात्माजी से वातचीत करने लगे। उन्हे जल्दी थी, शायद सभा के सिलसिले मे ही कोई जरूरी वात महात्माजी से करनी थी। लेकिन उनका यह वीच मे दखल देना, खासकर वहनो के वीच में धँसकर, महात्माजी को नही सुहाया। उन्होने जरा आख तरेरकर पूछा "क्यो, क्या वात है ?"

वे भाई सहम गये। वोले, "वापू, कुछ जरूरी वात पूछनी है।"

"हा, मगर कुछ विवेक भी तो रखना चाहिए न ?" उन्होने कुछ तेज स्वर में कहा।

वे सज्जन पसीना-पसीना हो गये। मैने इससे सवक सीखा।

× × ×

बहुत करके उन्हीं दिनों मैंने एक घटना किसीसे सुनी थी। मणि-भवन के एक घाटी* को किसी देश-भक्त ने, जो महात्माजी के निकटवर्तियों में से था, किसी बात पर थप्पड़ मार दिया था। महात्माजी को खबर लगी तो दोनों को बुलवाया और कहते हैं कि महात्माजी ने उन महाशय से घाटी की माफी मंगवाकर प्रायश्चित्त के तौर पर उसे साष्टांग नमस्कार करवाया। उन्हें यह सहन नहीं हुआ कि एक सभ्य, शिक्षित, देश-भक्त कहलानेवाला व्यक्ति एक नौकर तक पर हाथ उठावे, उसका इतना अपमान करे। मनुष्यता में वे सबको बराबर मानते थे। शरीर-श्रम को जीवन में वे प्रधानता देते थे और इसीलिए जो शरीर-श्रम करते हैं, उनके प्रति वे वैसा ही समभाव रखते थे जैसा कि पढ़े-लिखे नागरिकों के प्रति।

: ६ :

दो मजेदार घटनाएं

कई बार महात्माजी के सामने आकर लोग हतप्रभ हो जाया करते थे। जो कुछ सोच-साचकर आते थे, भूल जाते थे और कुछ-का-कुछ कहने लगते थे। इस तरह की दो घटनाएं मेरे सामने हुई हैं। एक तो इन्हीं दिनों बंबई की है। एक गुजराती सज्जन सपत्नीक मिलने आये। शायद विलायत से आये थे। सूट-बूट से लैस। महात्माजी किसी काम से उठ खड़े हुए थे—शायद कमरे के बाहर जा रहे थे कि दरवाजे पर ही इस महापुरुष से भेंट हो गई। खड़े-खड़े ही बातें होने लगीं। उन्होंने अपना परिचय दिया कि जब आप इंगलैंड में थे तब गुजरातियों की ओर से एक सभा बुलाई गई थी, जिसमें आपका भाषण हुआ था। उसका मैं ही सेक्रेटरी था। महात्माजी कुछ याद करने लगे। इतने ही

* बम्बई में घरेलू नौकरों को घाटी कहते हैं।

में वे फिर बोले, "उस सभा मे आपने इंग्लैंड के गुजरातियो से कहा था कि यहा आपको आपस मे अंग्रेजी मे ही बातचीत करना चाहिए।"

महात्माजी को सुनकर ताज्जुब हुआ। पूछा "मैंने क्या कहा था ?"

"यह कि...अगरेजी मे ही बातचीत करना चाहिए।"

"क्या 'अंग्रेजी में' कहा था ?"

"जी हा।"

"तो फिर वह कोई दूसरा गाधी रहा होगा। मैंने तो यह कहा था कि यहा गुजरातियो को गुजराती मे बातचीत करना चाहिए।"

अब तो वे साहब अपनी भूल समझ गये। बहुत झेपे और कहने लगे, "साहब, बडी भूल हुई। मैं उलटा कह गया।"

उस समय का दृश्य विचित्र था। वे साहब अप-टू-डेट अंग्रेजी लिबास मे थे। महात्माजी सिर्फ गुजराती ढग की धोती पहने हुए थे, सारा बदन नगा था। उस समय कच्छ या लगोट जैसी धोती पहनना शुरू नही किया था। पश्चिमी व पूर्वी सभ्यता के खासे दो नमूने थे। मुझे जहा तक याद है, साहब अंग्रेजी बोलते थे, गाधीजी गुजराती मे जवाब देते थे। गाधीजी का यह स्वदेशी-धर्म या मातृभाषा-प्रेम देखकर मैं गद्‌गद् हो गया।

एक दूसरी घटना वर्धा की है। एक लडकी महात्माजी के पास आश्रम मे रहती थी। उसके पिता ने उसकी शादी लडकी की इच्छा के खिलाफ कही तय कर दी। उस समय लडकी पिता के पास थी। वह चुपके से भाग कर महात्माजी के पास आगई। माता-पिता समझ गये कि आश्रम मे गई होगी। उनका बडा क्रोध-भरा पत्र महात्माजी के पास आया। लिखा कि हम सारा किस्सा आपको सुनाने और लडकी को लिवाने वर्धा आ रहे है। महात्माजी की तरफ से स्व० श्रद्धेय जमनालालजी उनको लेने स्टेशन गये। माता-पिता दोनो रात के वक्त सत्याग्रहाश्रम (वर्धा) के ऊपर वाले कमरे मे महात्माजी से मिले। महात्माजी ने उस समय लडकी को भी वहा बुला लिया था। जमनालालजी

दोनों को लेकर कमरे में दाखिल हुए। दम्पती ने बड़े भक्तिभाव से सिर टेककर महात्माजी को प्रणाम किया। महात्माजी ने हंसकर उनके प्रणाम का उत्तर देते हुए पूछा "रास्ते में किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"नहीं महात्माजी, यहां आने में कष्ट कैसा ! यह तो हमारा अहोभाग्य है कि आपके दर्शन हुए।"

"अच्छा,...को लिवाने आये हो। ले जाओ! यह सामने बैठी है।"

"नहीं, यह तो आपकी बेटी है, यहीं रहेगी।"

"तो फिर ठीक है, यहीं रहेगी।" हंसते हुए उन्होंने जवाब दिया और लड़की की ओर मुखातिब होकर कहा, " .,तो तुम यहीं रहो। देखो, पिताजी जबतक यहां रहें, इन्हें किसी बात का कष्ट न हो। इनकी खूब सेवा करना।"

जमनालालजी और हम लोग हक्का-बक्का रह गये। समझ रहे थे कि आज बापू के सामने कोई दृश्य जरूर होगा, लड़की की कुछ मुसीबत होगी, बापू को कुछ बुरा-भला सुनना पड़ेगा। पर बात बिलकुल उलटी हुई। उनका गुस्सा न जाने कहां चला गया। जो लड़की को लेने आये थे सो उलटा देकर चले गये। यह बापू की अहिंसा की पूर्ण विजय थी चमत्कार था। विरोधी मित्र बन गया। अक्रोध ने क्रोध को जीत लिया। शाप वरदान होकर सामने आया।

: ७ :

विनम्रता की मूर्ति : नाथजी

मैं व भाई वैजनाथजी अहमदाबाद गये ही थे। स्वामी आनन्द के चलाये 'नवजीवन क्लब' में रहते थे। जिस कमरे में हम लोग बैठा करते थे उसीमें एक दिन एक हृष्ट-पुष्ट गोरा-सा व्यक्ति आया। मोटी

खादी की धोती, वैसा ही कुरता, टोपी, बगल मे एक बडा-सा झोला। शायद एक ही दिन वह वहा रहा। उन दिनो स्वयसेवको की भर्ती चल रही थी। हमने समझा, कोई स्वयसेवक देहात से आया है। उसकी बातचीत, व्यवहार से किसी विशेषता का कोई आभास नही मिलता था। चेहरा बलवत्ते शान्त व तेजस्वी था। एक तो वह अपरिचित व्यक्ति, दूसरे हमे अपने काम से काम था। हमने उसकी तरफ कोई ध्यान नही दिया। उठने-बैठने आदि मे मामूली स्वयसेवक की तरह ही हमने उसके साथ व्यवहार किया। उसने भी हमारे इस व्यवहार पर अपनी नाराजगी नही झलकाई, कभी सकेत में भी उलाहना नही दिया।

एक-दो दिन के बाद स्वामी आनन्द ने हमसे कहा "चलो, आश्रम चलेंगे। वहा नाथजी आये है।" हमने पूछा कि नाथजी कौन है? उन्होने कहा, किशोरलालभाई के गुरु है। हमारी श्रद्धा बढी। साबरमती-आश्रम मे किशोरलालभाई के घर हम गये। वहा बडे आदर के स्थान पर एक परम शान्त और तेजस्वी मूर्ति को देखा। देखते ही हम सकपका गये। अरे, यह तो वही है जिन्हे हमने एक मामूली स्वयसेवक समझा था। अब हमे काटो तो खून नही। हमने लज्जित होकर उनसे क्षमा मागी। उन्होने कहा "आप लोगो ने मुझे मामूली आदमी समझा, सो ठीक ही था। किशोरलालभाई मुझे गुरु मानते है तो क्या मै सबका गुरु हो गया? और गुरु होना भी कोई बडी बात नही है। मुझे आध्यात्मिक विषयो का कुछ अनुभव है। उनसे किशोरलालभाई को लाभ हुआ, उनकी गुत्थी सुलझ गई तो इसमे कौन बडी बात है? इसमे मैने किया ही क्या? साधारण मनुष्य का कर्त्तव्य एक-दूसरे को सहायता देना है। वही तो मैने किया। इसमे मै अपनी क्या विशेषता या बडप्पन समझू! आप लोगो को सकुचाने की जरूरत नही है।" इस आशय के उनके उद्गारो ने तो हमारा हृदय और भी जीत लिया। बापू के आश्रम मे यह तो बापू-सा ही विनयशील व मानवता का दूसरा नमूना देखने को मिला। जब कभी भी बाद में हम लोग पूज्य

नाथजी से मिले है और आदरपूर्वक झुककर प्रणाम किया है तो उन्होने उसपर उलाहना दिया है। जब हम लौटे है तो खुद उठकर दरवाजे तक पहुचाने आये है। हमारे मना करने पर भी वे इस नियम या स्व-भाव का पालन बराबर करते है। सच्ची विशेषता वह है जिसे दूसरे अनुभव करे, किन्तु हम उससे अनजान रहे।

मुहम्मद पैगम्बर के जीवन-चरित मे मैने पढा है कि जब वे जमात मे बैठते तो नये आदमी को सहसा पहचानना मुश्किल होता था कि हजरत मुहम्मद कौनसे है। ऐसी साधारण वेश-भूषा व रहन-सहन उनकी थी। व अपने घुटने सिकोड कर बैठते थे कि पासवाला व्यक्ति सकोच से सिकुड कर न बैठे। उसे बैठने के लिए काफी जगह मिले।

: ८ :

बापू की महानता का मूल

बापूजी विनय के अवतार थे। वैसे वे जीतेजी ही बिन्दु से सिन्धु हो गये थे; परन्तु मरने के बाद तो सिन्धु से विभु हो गये। पहले जो विशाल समुद्र था वह अब व्यापक आकाश हो गया। यह हुआ उनके रजकण बनने की साधना से। वे कहा करते थे कि मनुष्य को महान् बनने के लिए रजकण बनना चाहिए। उन्होने अपने जीवन मे रजकण बनने की जबरदस्त साधना की। उन्होने बडे-बडे और अद्भुत काम कर डाले; परन्तु कई बार उन्होने कहा कि मै अपने को खोखला पाता हूँ भगवान् की शक्ति से ही मै ऐसे प्रचण्ड काम कर पाता हू। जो रजकण या शून्यवत् बन जाता है वही भगवान् की शक्ति को पा सकता है। महात्माजी को सब लोग केवल बडा नेता ही नही, बल्कि महापुरुष मानते थे। उन्होने भारतवर्ष मे मिट्टी से महापुरुष पैदा कर दिखाये। स्व० हकीम अजमलखा उन्हीके समय मे नेता हुए थे; बल्कि यह कहे

तो हर्ज नही कि वे उनके ही बनाये हुए नेताओ मे से थे। एक बार वे महात्माजी के आश्रम सत्याग्रह आश्रम साबरमती मे गये। जहा तक मुझे याद है, यह १९२४–२५ की बात है। शाम का समय था। आश्रम मे शाम को सूर्यास्त के पहले ही खा लेने का रिवाज था। हकीम साहब को महात्माजी के यहा खाना खाना था। महात्माजी की कुटिया मे पुज्य बा खाना बना रही थी और बापूजी खुद ला-ला कर परोस रहे थे। खाना बनानेवाले या परोसनेवाले दूसरे लोग न हो सो बात नही थी। महात्माजी ने इस अतिथि का सत्कार इस रूप से करना ही ठीक समझा था। एक शरीफ मुसलमान को आर्य-आदर्श का नमूना बताना था। महात्माजी के मन मे हिन्दू-मुसलमान भेद जैसी कोई चीज नही थी। फिर भी हिन्दुत्व का उत्तम आदर्श अपने जीवन के द्वारा उपस्थित करना उन्हे बहुत प्रिय था। इसमे उनकी अतिथि-सत्कार की भावना ही नही, अपने को रजकण बनाने की साधना भी समाविष्ट थी। जब हकीम साहब खाना खा चुके तो बापूजी खुद लोटा लेकर हाथ धुलाने लगे। उस समय मैं वहा मौजूद था। और भी दो-तीन आश्रमी थे। मेरे मन मे आया कि बापूजी के हाथ से लोटा ले लू; परन्तु जल्दी मे सूझा नही कि क्या करूँ? मैं बापूजी की इस महानता पर मन-ही-मन मुग्ध हो रहा था। इतने में ही एक और घटना हुई जिसे देखकर मैं हैरान रह गया।

खाना खाकर हकीम साहब आश्रम के बरामदे से नीचे उतरने लगे। पत्थर की दो-तीन सीढिया थी। शाम का समय था। हकीम साहब को कुछ रतौंध आती थी। महात्माजी उनका हाथ पकड कर सीढी की तरफ बढे। हकीम साहब के जूते सीढी की तरफ रखे हुए थे। उनका मुह घर की तरफ था। मै हकीम साहब और महात्माजी के ठीक पीछे-ही-पीछे सीढी उतर रहा था। मेरे मन मे आया ही था कि आगे लपक कर जूतियो का मुह सीधा कर दू। इतने में ही महात्माजी ने अपना हाथ आगे बढाया और दोनो जूतिया उठाकर सीधी कर दी और एक सीढी ऊपर उनके पहनने के लिए रख दी। मै मन मे शर्मिन्दा तो हुआ

हो, पर महात्माजी की इस विनयशीलता पर कुर्बान भी हो गया। मैंने मन मे सोचा कि कम-से-कम जूतियो के लिए तो महात्माजी हममे से किसीको इशारा कर ही सकते थे, परन्तु यह गौरव उन्होंने खुद ही लिया। अपने को ही उसका अधिकारी समझा। हम छोटे लोग ऐसे समय में अपने से छोटे लोगो से ऐसा काम लेते है और समझते है कि इस तरह हमने अपने बडप्पन की रक्षा की। परन्तु महात्माजी को तो असली महानता प्राप्त करनी थी रजकण बनना था। यह घटना और महानता का यह आदर्श मेरे मन मे सदा के लिए अकित हो गया। जब कभी छोटा या हल्का काम करने के अवसर आते है तब यह घटना हृदय मे अपूर्व प्रेरणा और बल देती रहती है। महात्माजी के प्रचण्ड कामो ने उन्हे इतना बडा नही बनाया जितना उनके जीवन की इन छोटी-छोटी घटनाओ ने। वास्तव में इन छोटी घटनाओ में जीवन के ऐसे एकान्तिक प्रसगो मे ही मनुष्य के विशाल और महान् बनने के बीज समाये रहते है।

: ९ :

सत्याग्रही बापू

१९२१ में अहमदाबाद काग्रेस हुई। प्रतिनिधियो आदि के लिए जो स्थान पण्डाल आदि बनाये गये थे वे सब खादी के थे। अत. उसका नाम खादी-नगर रक्खा था। काग्रेस के इतिहास में खादीमय नगरी का वह पहला दृश्य था। देशबन्धुदास सभापति होने वाले थे, किन्तु वे तथा प० मोतीलालजी नेहरू, जो उस समय शायद काग्रेस के प्रधान मत्री थे, गिरफ्तार कर लिये गए थे और हकीम अजमलखा सभापति हुए थे। इन गिरफ्तारियो के कारण इस अधिवेशन मे बडी सनसनी फैली हुई थी। लोगो के जोशोखरोश का ठिकाना नही था। युवराज के स्वागत-बहिष्कार के सिलसिले मे सत्याग्रह--सविनय-कानून-भग--आन्दोलन चल

रहा था, परन्तु सत्याग्रह के सिद्धान्त व नियम अभी सबकी समझ में पूरे-पूरे नही आये थे। सत्याग्रह का एक नियम यह भी है कि जेल चले जाने के बाद हमारी नागरिक मृत्यु हो जाती है। बाहर के कामो में दखल देने लायक हम नही रह जाते। अत सत्याग्रही कैदियो के लिए यह नियम व आदेश था कि वे जेल मे से बाहर के आदोलनो या दूसरे कामो के लिए हिदायतें, सूचनाए या आदेश न दें। बाहर के काम बाहर रह जाने वालो की जिम्मेदारी पर छोड दें; क्योकि बाहर की परिस्थिति को वे जानते या जान सकते नही और बाहर वाले उनसे आजादी से मिलजुल कर बातचीत कर सकते नही। ऐसी दशा में इस प्रकार जेल से आन्दोलन चलाने में सिवा हानि के कोई लाभ नही, किन्तु इसके विपरीत उस अधिवेशन के मौके पर कई नेताओ ने अपने-अपने विचार व सूचनाए महात्माजी तक पहुचाई। जहातक मुझे याद है इनमें देशबन्धु, प० मोतीलालजी व मौ० आजाद भी थे। जब ये सदेसे गाधीजी तक पहुंचे तो उन्होने कहा, "ये सब हमारे बडे नेता है, परन्तु नागरिक के नाते अब उन्हे कुछ सुझाने या करने का हक नही है। हम इनकी बातो पर गौर नही कर सकते। हम बाहर हैं, जो सारी परिस्थिति को जानते है। हम जैसा ठीक समझेंगे, निर्णय करेंगे। उन्हे हम लोगो पर विश्वास रखकर जेल में शान्त व निश्चिन्त रहना चाहिए।" कितने निर्भय होकर गाधीजी ने बडे-बडे नेताओ के हस्तक्षेप के प्रभाव से अपने को किस दृढता से बचाया, यह देखने योग्य है। इसमें केवल उनके नेतृत्व का ही नही, बल्कि सच्चे सत्याग्रही का गुण टपकता है।

× × ×

इसी अधिवेशन में उनकी व्यवहार-कुशलता व सत्याग्रही इलाज का एक नमूना देखिए। महासमिति (A I. C C) की बैठक हो रही थी। कलकत्ते के एक कार्यकर्ता, श्री बडे, गोरक्षा मे बहुत दिलचस्पी लेते थे। भले व सच्चे आदमी थे। गोरक्षा पर किसीने कोई प्रस्ताव भेजा था। जहातक मुझे याद है, कानूनन गोरक्षा बन्द करने के सम्बन्ध में था। गाधीजी ने राय दी कि यह प्रस्ताव काग्रेस में लाना

मौजू न होगा। इसपर बड़े साहब जिद पकड़ गये कि यह प्रस्ताव लेना ही होगा। हकीम साहब सदर थे और महात्माजी उनकी मदद कर रहे थे। सदर साहब ने बड़े साहब को जिद छोड़ने के लिए व बैठ जाने के लिए कहा। दो-तीन बार उनके मना करने पर भी वे खड़े-खड़े कहते ही रहे, यह प्रस्ताव लेना ही पड़ेगा। तब सदर साहब ने मजबूर होकर कहा कि आप मेरा आदेश नही मानते है तो सभा छोड़कर चले जाइए। उसपर भी उन्होने कहा कि मै नही जाऊगा। दो तीन बार ऐसा हुक्म दिया गया, पर वे टस-से-मस न हुए। अब सभा मे हलचल शुरु हुई। क्या इन्हे पकड़कर या पुलिस बुलाकर हटाया जाय ? लोग उन्हे हटाने की दिशा मे ही तरह-तरह के उपाय सोचते थे, किन्तु गाधीजी ने एक नया ही सत्याग्रही उपाय सोचा। 'बुराई के साथ सहयोग नही करना चाहिए' इस नियम या सिद्धान्त मे से वह उपाय निकाला। उन्होने सभी सदस्यो से अनुरोध किया कि यदि श्री बड़े सभा-स्थान से नही हटते है, सभापति के आदेश का पालन नही करते है, तो हम सब यहा से हट जाय। सब सदस्य व दूसरे लोग उठकर चले गये, अकेले बड़े साहब खड़े रह गये। इस अनुशासन व सत्याग्रही प्रतिकार-विधि का लोगो पर बड़ा असर हुआ। सब महात्माजी की मौलिकता, सूझ-बूझ की सराहना करने लगे।

: १० :

धीरज और उदारता

अहमदाबाद काग्रेस के बाद महात्माजी ने तय किया कि (ब्रिटिश) सरकार को एक साल की अन्तिम चेतावनी दी जाय। इस बीच स्वराज्य की माग पूरी न हुई तो बारडोली मे सामूहिक सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय, परन्तु चौरी-चौरा काण्ड के बाद उन्होने सत्याग्रह स्थगित करने की घोषणा की। कार्यसमिति मे स्थगितता का प्रस्ताव

स्वीकृत हो चुका था व दिल्ली की महासमिति मे उसका समर्थन कराना था। उसमें महात्माजी का कसकर विरोध हुआ। खासकर सत्याग्रह स्थगित कर देने के लिए ज्यादातर लोग यह मानते थे कि कही किसी जगह हिंसाकाण्ड होजाने से सुदूर बारडोली का सत्याग्रह कार्य-क्रम क्यो रोका जाय ? और यह तो सभव ही नही है कि इतने बडे देश के किसी कोने मे भी हिंसा-कार्य न हो, जब कि सत्याग्रह के द्वारा इतनी हलचल लोगो मे मच रही हो। श्री केलकर (अब स्व०) व उनके समर्थको ने महात्माजी को खूब आडे हाथो लिया। जब अहमदाबाद मे दिल्ली की ये खबरे पढी तो मुझे बडा दुःख हुआ। इतना विरोध होने पर भी आखिर जीते महात्माजी ही। किन्तु उससे मैंने दो नतीजे निकाले (१) लोग महात्माजी के अहिंसा सिद्धात को समझे नही है और (२) महात्माजी को भी वे एक चालबाज आदमी एव अहिंसा को एक बहाना मानते हैं। अत. जब महात्माजी साबरमती लौटे तो मैने उनसे कहा, "बापू, अबकी तो दिल्ली मे आपका बहुत विरोध हुआ। मुश्किल से आपकी जीत हुई। यह तो शुभ चिह्न नही है।" उन्होने कहा "विरोध से तो मैं खुश होता हू। खुला विरोध मुझे बहुत अच्छा लगता है। विरोध को मैं अशुभ चिन्ह नही मानता। इस विरोध से मुझे विश्वास हो गया कि भारत के देशभक्त किसीसे दब नही सकते। जब मेरा मुकाबला करने को तैयार है, जिसपर उनकी इतनी श्रद्धा है तो फिर किससे दबेंगे ? लेकिन बावजूद इस विरोध के लोगो ने वोट मेरे पक्ष मे दिये। शब्दो से मेरा विरोध करते थे, परन्तु कृति मे मेरे साथ हुए। इससे मुझे ज्यादा दुःख हुआ। मेरे विचारो को नापसद करके मेरे प्रेम के लिए मेरे साथ वोट देना मैं कमजोरी मानता हू और इससे मुझे अपनी सही शक्ति का अन्दाज नही होता।"

मैने बापू से कहा, "मालूम होता है, लोग आपकी अहिंसा नही समझते। आपको भी वे एक चालाक आदमी मानते हैं, जो अहिंसा की ओट में अपना काम करता है। इसीसे आपके इस कदम को समझ नही पाते और आपकी आलोचना करते है। अत ज्यादा अच्छा यह हो कि

आप सिर्फ दो बातो को लेकर सारे देश में जनता के पास जाइए। एक खादी, दूसरी अहिंसा एक शरीर दूसरा प्राण। जबतक लोग इसे नही समझेंगे, आपकी कठिनाई सदा बनी रहेगी।"

उन्होने कहा "मैं एक बार जनता में हो आऊगा। दो बार हो आऊगा, मगर जिनका सदा जनता से सपर्क रहेगा वे तो है मेरे साथी दूसरे नेता व कार्य-कर्त्ता जो अपनी मर्जी के मुताबिक मेरी बातो का अर्थ जनता के सामने करते रहेगे। अत जबतक साथी लोगो को अच्छी तरह न समझा सकू, सीधा जनता तक जाने में ज्यादा लाभ नही, क्योकि अर्थ का अनर्थ करना न करना साथियो के हाथ में है।"

मैंने कहा, "साथियो के समझने का काम तो बड़ा विकट है। उनकी हालत देखकर तो निराशा होती है।"

बापू हसकर बोले "यही तो हमारी परीक्षा का समय है। जो कुछ ईंट, चूना, मसाला है सो सामने है। इसीसे भारत-माता का भव्य मन्दिर हमे बनाना है। हमारी तारीफ इसीमें है कि इसी मसाले को काम मे लाकर उम्दा भवन बनाया जाय। सब सामग्री अच्छी हो और फिर इमारत बढिया बने तो कारीगर की क्या तारीफ? मामूली कारीगर भी उसमें कामयाब हो जायगा। अत निराश व दुखी होने का कोई कारण नही है। ज्यादा दृढता, श्रद्धा व परिश्रम की जरूरत है। हम अपना काम सचाई व सगठन से करते रहेगे तो सब ठीक हो जायगा।"

मै नवीन उत्साह व स्फूर्ति लेकर लौटा। विरोधियो के प्रति उनकी उदारता, अपने को जितानेवालो की कमजोरी पर उनकी दृष्टि, उससे प्रसन्न न होकर उल्टा उसी पर चिन्तित होने की उनकी सत्याग्रही वृत्ति तथा विरोध, आक्रमण, व निराशा के बीच अपूर्व स्थिरता व आशावाद का वह अनुभव भुलाये नही भूलता। आज भी उनकी बातचीत का सारा चित्र, उनकी वह गंभीर, किन्तु प्रसन्न व आत्मविश्वासमयी मूर्ति, ज्यो-की-त्यो मेरी आखो के सामने खड़ी हो जाती है।

: ११ :

आश्रम-संचालन

सत्याग्रहाश्रम, सावरमती से 'नवजीवन मुद्रणालय' ४-५ मील दूर था। मै आश्रम से प्राय पैदल दफ्तर 'हिन्दी नवजीवन' जाया-आया करता था। जाती वार महात्माजी से अवरार मिलकर जाता था, जिससे उन्हें प्रेस-मैटर देना हो तो साथ लेता जाऊ।

एक बार (सम्भवत १९२३-२४) मै गया तो वापू को वडा उदास देखा। मुझसे पहले वहुत करके काका सा० (कालेलकर) या स्व० श्री मगनभाई गाधी उनसे मिलकर गय थे। मैने वापू से पूछा कुछ मैटर है? उन्होने मानो शून्य में से निकलकर मेरी ओर देखा और बोले "आज तो कुछ लिख नही पाया। ये आश्रम के प्रश्न ऐसे परेशान कर देते है कि कुछ पूछो नही। अभी · गये है। उनका व·· का ऐसा मतभेद चल रहा है कि उसके मुकावले स्वराज्य का प्रश्न सुलझाने में मुझे कोई कष्ट नही होता। दोनो स्वच्छ-निर्मल व्यक्ति है। परन्तु अपने-अपने मत मे ऐसे दृढ है कि मिलकर काम करना असभव होता जाता है। स्वराज्य की वडी-वडी लडाइया लडते हुए मुझपर जरा भी जोर नही पडता, पर यह आश्रम चलाना वडा विकट काम है। फिर भी अपनी जान में मेरी यह सर्वोत्तम कृति है।"

न मैने कभी आश्रम की समस्याओ के वारे मे वापू से कुछ कहा, न कभी वापू के ऐसे उद्गार मेरे सामने निकले हालाकि मै उन समस्याओ से थोडा-वहुत परिचित तो रहता ही था, परन्तु मेरी भूमिका एक साधक या विद्यार्थी की थी, अपना स्थान या रास्ता छोडकर जाने

व बिला जरूरत गहरे पानी मे पैठने की मेरी आदत भी नही है, परन्तु बापू उस दिन मानो भरे बैठे थे किसी की मानो राह देख रहे थे कि मिलते ही हृदय उडेल दें। इत्तफाक से मैं सामने आ गया। बापू के इन उद्गारो से मैं सकपका गया, किन्तु दबी जबान से बोला "बापूजी, ऐसा मालूम होता है हम लोगो मे दूसरो की भावनाओ का खयाल रखने (Consideration for others) की कमी है, अपनी बातो का आग्रह अधिक है, दूसरो के दृष्टि-बिन्दु को समझने की प्रवृत्ति कम है।"

बापू तुमने बिल्कुल ठीक कहा है।

इसके बाद मैं अपना झोला उठाकर दफ्तर की ओर चल दिया। मेरे दिमाग मे बापू के ये शब्द अबतक गूजते है 'यह आश्रम चलाना स्वराज्य से भी विकट काम है।' अपनी सस्थाओ के सचालन मे जब क्लेश के अवसर आते है तो मै साथियो को बापू की यह बात सुनाया करता हू और खुद भी बहुत सान्त्वना पाता हू।

: १२ :

दो अवगुणों से बरी

इसी तरह एक दूसरे दिन दफ्तर जाते हुए जब मै बापू के पास गया तो उन्होने मुझे एक पोस्टकार्ड डाक में डालने के लिए दिया। मै सहसा किसी की चिट्ठी-पत्री नही पढता हू। पोस्टकार्ड तक के लिए मै एहतियात रखता हू। किन्तु इस कार्ड में सिर्फ दो-तीन ही सतरे थी। पेन्सिल से लिखा था। पता एक बडे नेता का था इससे सहसा जानने की उत्सुकता हो आई। उसे मै रोक न सका। पढा तो उसमें लिखा था "आपके पत्र में रोष है, इसलिए उसके उत्तर की कोई आवश्यकता नही समझता।" मै पढकर दग रह गया। जिन्हें यह पत्र लिखा गया था वे बडे तेजस्वी नेता थे। बडे छुईमुई भी थे। बापूजी

का यह पत्र कडा ही नही, बडा रूखा भी था। मुझे डर लगा कि बापू से उनकी बिगड जायगी। परन्तु बापू का साहस भी खूब था। रोष बडे-से-बडे व्यक्ति का भी क्यो न हो, उसका क्या जवाब? वह या तो सहन किया जा सकता है या उपेक्षा के योग्य है। अधिक सोचना मेरे लिए 'अव्यापारेषु व्यापार' था, परन्तु यह उत्सुकता जरूर बढी कि यह मामला क्या है।

शाम को दफ्तर से लौटने पर बापू के प्राइवेट सेक्रेटरी से पूछा। उन्होने वह असली पत्र बता दिया जिसके जवाब मे बापू ने यह कार्ड लिखा था। उसमे और बातो के साथ यह लिखा था :

"··ने आपसे यह शिकायत की है कि मै फिर से शराब पीने लगा हू। वे मुझसे जलन रखते है और मेरे खिलाफ झूठा प्रचार करते है। जबसे मैने शराब छोडी है अबतक उसे छुआ भी नही है, परन्तु चूकि आपसे झूठी शिकायत की गई है, इसलिए उसके विरोध मे अब मैने शराब पीने का निश्चय किया है।" ··आदि।

जिनका नाम इस पत्र मे लिखा था वे भी एक बडे नेता थे। वास्तव में ऐसी कोई शिकायत उन नेता ने बापू से नही की थी।

बडे-बडे भी किस तरह गलतफहमियो के शिकार हो जाते है, सुनी-सुनाई बातो पर विश्वास करके कैसा कदम उठा लेते है, यह प्रकाश मेरे मन पर पडा। बापू ठीक ही कहा करते थे कि कोई बात तबतक मुह से न निकालनी चाहिए जबतक उसे सिद्ध न कर सको। हम लोग अक्सर कच्चे कान व लम्बी जबान के होते है। गाधीजी इन दोनो अवगुणो से बरी थे।

: १३ :

वीर की अहिंसा

गाधीजी ने 'अहिंसा' को सत्य के समान ही परम धर्म माना व बताया है, परन्तु उनकी अहिंसा कायर की नही, वीर की अहिंसा है। जहा किसी तरह जान बचा लेने की भावना है वहा अहिंसा नही। जहा खतरे से मुह मोडने, भाग जाने की सम्भावना है वहा अहिंसा नही। इससे गाधीजी ने उस हिंसा को श्रेष्ठ माना है जिसमें भय, सकट, हमले का सीधा सामना किया जाता हो। इसके कई उदाहरण है। एक-दो घटनाए मेरे सामने की है। शायद १९२३ की बात है। गुजरात के पचमहाल या गोधरा जिले मे हिन्दू-मुस्लिम दगा बडे जोर का हुआ था। वहा से कुछ हिन्दू भागकर महात्माजी के पास साबरमती आये। मुसलमानो के अत्याचारो की उन्होने बडी शिकायते गाधीजी से की। सब बडे दुख लेकिन शाति के साथ सुनकर गाधीजी ने उनसे पूछा, "तो तुम लोगो ने इसके मुकाबले मे क्या किया ?"

"साहब, क्या करते ? आपकी अहिंसा ने हमारे हाथ-पाव सब बाध रखे है, इसीसे हमारी पिटाई होती है !"

इस जवाब से महात्माजी का चेहरा तमतमा उठा। वे कडे स्वर में बोले "सो तो ठीक है, पर मेरी अहिंसा ने यह नही कहा था कि तुम लोग वहा से भागकर अपनी बुजदिली की रिपोर्ट मुझे देने आते ! मेरी अहिंसा तो ऐसे समय पर मर मिटने का सदेश देती है। तुममें यदि मर-मिटने का साहस नही था तो अपने मत के अनुसार उस स्थिति का मुकाबला करना चाहिए था। तुमने मेरे मत को तो समझा नही और

अपने मत पर चलने की हिम्मत नहीं तो मुझे अपना मुह दिखाने आने की क्या जरूरत थी ?"

× × ×

एक और घटना है जो साबरमती में ही किसी मित्र से सुनी थी। गुजरात विद्यापीठ की कुछ लडकियो ने शायद श्री किशोरलालभाई से पूछा कि लडके कभी-कभी हमसे छेडखानी करते है तो हम क्या करे। कैसे उसका प्रतिकार करें ? निश्चय ही वे अहिंसात्मक प्रतिकार का उपाय पूछ रही थी। किशोरलालभाई ने कहा "तुम्हारे पैरो मे चप्पल तो होते ही है, उठाकर मार दो।"

लडकिया चकित रह गई। अहिंसा के अनुयायी ने यह हिंसा का मार्ग कैसे बताया !

उन्होने कहा "यह तो हिंसा हुई। यह तो हम जानती है। हम तो अहिंसात्मक उपाय जानना चाहती है।"

किशोरलालभाई, "तुमको इसमे शका हो या तुम्हारा समाधान न होता हो तो खुद बापू से जाकर पूछ लो।"

कहते हैं कि लडकिया बापू के पास गई। बापू ने कहा "बस, किशोरलाल ने यही बताया। मै तो कहता हू कि यदि तुम्हारे पास छुरी हो तो तुम भोक दो, यदि तुम्हारे साथ कोई बलात्कार करना चाहे। इसे मै तुम्हारे लिए अहिंसा ही कहूगा।"

मतलब यह कि वे लडकियो को निर्भयता का पाठ पढाना चाहते थे, जोकि अहिंसा का असली गुण है।

: १४ :

अद्भुत सहनशीलता

गाधीजी की मूक सहनशीलता और दूरदर्शिता की एक घटना इस समय याद आ रही है। यह उस समय की बात है जब स्व० श्रद्धा-

नन्दजी ने मलखानो की शुद्धि का आन्दोलन उठाया था। उन्ही दिनो किसी प्रसग को लेकर महात्माजी ने आर्यसमाज, महर्षि दयानन्दजी के सत्यार्थप्रकाश, आदि की कुछ आलोचना की थी। हिन्दू, खासकर आर्यसमाजी, मुसलमानो पर हिन्दू-स्त्रियो को उडाकर मुसलमान बना लेने का आक्षेप कर रहे थे। उन्ही दिनो एक-दो घटनाए ऐसी भी महात्माजी के कानो तक पहुची थी, जिनमे आर्यसमाजियो ने मुसलमान स्त्रियो को भगाकर या छिपाकर हिन्दू बनाया था शुद्ध किया था। इसका भी उल्लेख या सकेत उनके लेखो मे था। इसपर हिन्दू-समाज खासकर आर्य-जगत् मे बडा हो-हल्ला मचा। शायद ही कोई आर्यसमाजी पत्र या व्यक्ति ऐसा बचा हो जिसने महात्माजी को आडे हाथो न लिया हो। महात्माजी के पास तो सैकडो विरोध के पत्र व तार आ ही रहे थे, हम लोगो के पास भी, जो उनके पत्रो के सपादकीय विभाग मे थे, पत्र-पर-पत्र चले आ रहे थे। एक दिन मैने बापू से पूछा "बापू, विरोधी पत्रो का ढेर लग गया है, आखिर इनका क्या किया जाय ? आप इनका कोई उत्तर या सफाई 'यग इडिया' में क्यो नही दे देते ? और बातो के अलावा हिन्दुओ द्वारा मुसलमान लड़की को भगाने या छिपाकर शुद्ध करने की घटना पर कइयो ने बापू को चुनौती देकर कहा था कि ये गलत बाते है। मैने बापू को सुझाया कि आप बिना प्रमाण के तो कभी कोई बात लिखते नही, जब आपने उल्लेख या सकेत किया है और लोग चुनौती-पर-चुनौती देते है तो वे प्रमाण क्यो नही पेश कर देते जिससे यह हल्ला बन्द हो जाय ?" बापू ने मुस्कराकर कहा "मै जान-बूझ कर चुप हू। अपनी चुप्पी के द्वारा ही मै आर्यसमाज की बडी सेवा व रक्षा कर रहा हू। इस समय मेरा यही धर्म है, क्योकि मै आर्य-समाज और आर्यसमाजियो का मित्र हूं। उनकी यह असहनशीलता उनकी कमजोरी है। मुझ जैसे उनके मित्र की आलोचना पर तो उन्हें गम्भीरतापूर्वक आत्मपरीक्षण करना चाहिए, परन्तु यह दु ख की बात है कि इस क्षमता का प्रदर्शन वे इस समय नही कर रहे है। मैने जो कुछ लिखा है, वह सत्य लिखा है व जिन्होने मुसलमान लडकियो को इस

तरह शुद्ध किया है खुद उनके बयान के आधार पर मैने लिखा है। मुझे उन्होने वे नाम भी बता दिये। मैं दग रह गया। फिर उन्होने कहा—"यदि आज मैं इसका प्रमाण दू, इन नामो को खोल दू तो मुसलमान आर्यसमाज को खा जायंगे। इस वातावरण में इससे द्वेष व शत्रुता ही बढेगी। मुझे यह मंजूर नही है। मै तो केवल आर्यसमाज की शुद्धि चाहता हू। अब इसका यही उपाय है कि अपने मित्र पर वे लोग जो भी आक्षेप, आपत्ति या हमला करते है उसे मैं शांति के साथ सह लू। अनजान लोग थोडी देर के लिए मुझे झूठा भी मान लें तो उससे उतनी हानि नही; क्योकि मेरा सत्य इन हमलो से कही बढकर मजबूत है।"

गांधीजी ने सत्य व शुद्धि की खातिर विष की ऐसी कई घूटे पी है। जैसा उनमें सत्य की तलवार उठाने का निर्भय बल व साहस था, वैसा उनमें दूसरो के अनुचित आक्रमणो, आपत्तियो, शकाओ को सहने का भी अपरिमित अहिंसाबल था।

: १५ :

सूक्ष्म दृष्टि

गाधीजी की निगाह कितनी पैनी थी, कितनी तफसील की बाते वे सोचते थे व याद रखते थे, खासकर बीमारो व बीमारियो के बारे में, इसकी कुछ घटनाए सुनिए। दृष्टि उनकी सूक्ष्म ही नही, भेदक भी थी। उन्होने एक बार मुझसे कहा था कि मनुष्य के सामने आते ही उसका बहुत-कुछ अन्दाजा मुझे हो जाता है। स्व० जमनालालजी कहा करते थे कि मनुष्य के पत्र-व्यवहार, चाल-ढाल, सूरत-शकल से मुझे उसके स्वभाव व उद्देश्य का अन्दाजा हो जाया करता है। महापुरुषो में यह गुण आवश्यक रूप से होता है।

१९२१ की बात है। आश्रम में पहुचने के थोडे दिन बाद ही मै अपने माता-पिता को भी साबरमती ले गया। मेरे पिताजी का स्वभाव

बडा खरा था। अपने मन की सच्ची बात वे बडे कडे ढग से बडे-से-बडे आदमी के मुह पर कहते हुए नही हिचकते थे। वे मुहफट प्रसिद्ध थे, इतने कि मुझे लोगो के नाराज हो जाने का डर लगा रहता था। जब वे आश्रम में आये तो पूज्य बापू का दर्शन उन्हे करना व मुझे कराना ही था, पर मैं मन मे डर रहा था कि कही बापू को कुछ कह-सुन न बैठे, क्योकि वे बापू के, खासकर छूआछूत-सम्बन्धी विचारो व आन्दोलन से, सहमत नही थे। सुबह ८-९ बजे का वक्त बापू ने मिलने के लिए दिया था। बापू आश्रम वाले अपने घर के बरामदे में पूर्व की ओर मुह कर के अक्सर बैठा करते थे। सामने साबरमती बहती थी। नदी व बापू की कुटिया के बीच में नदी के किनारे पर ही थोड़ा-सा मैदान था जिसमे बापू प्राय. सोया करते थे और उसमे से होकर लोग बापू से मिलने आते-जाते थे। सामने लकडी की जाली व कई बड़ी-बडी खिडकिया लगी हुई थी जिनमे से बापू अक्सर आने वाले को देख सकते थे व कई बार देख भी लिया करते थे। पिताजी, मार्तण्ड और मैं हम तीनो मिलने गये थे। खिडकी मे बापू ने हमे आते हुए देखा। हम कमरे मे पहुचे व प्रणाम किया। पिताजी ने उन्हे 'जय रामजी की' शब्द से वन्दन किया। वे प्राचीन जाति-प्रथा या वर्ण-व्यवस्था की परिपाटियो के बडे अभिमानी थे, ब्राह्मण या साधु-सन्यासी के सिवा किसीको प्रणाम या नमस्कार नही करते थे, 'जय राम', 'राम राम', 'जय गोपाल', 'जय रघुनाथजी' आदि शब्दो से अभिवादन किया करते थे। बापू ने पहला प्रश्न पिताजी से किया "आपके पाव मे कुछ तकलीफ है?" मैं बीच ही मे बोल उठा "नही तो।" इतने मे पिताजी बोले "हा, कुछ थी। अब तो नही रही है, पर कुछ चलने में दिक्कत होती है।" बापू ने कहा, "हा, मैंने आपको देखा तो मुझे यही शक हुआ।" हम सुनकर दग रह गये। पिताजी के कोई २—३ साल पहले घुटने मे मामूली दर्द हुआ था। इलाज से वह ठीक हो गया था। हमने कभी पिताजी की चाल मे कोई फर्क नही देखा, मगर बापू ने भाप लिया। बापू की इस पैनी दृष्टि पर जहा बडा कुतूहल हुआ, वहा अपनी मूर्खता पर शर्मिन्दा भी।

इसके १३–१४ वर्ष बाद दिल्ली में जब पिताजी बापूजी से मिलने गये तो बापू ने पहला सवाल किया। "आपके पाँव की तकलीफ अब कैसी है ?" कितनी पुरानी बात उन्होंने याद रखी ? मिलते ही वे स्वास्थ्य व बीमारी के बारे में जरूर प्रश्न करते थे। पत्रों में भी इस बारे मे जरूर पूछताछ करते थे। मेरा स्वास्थ्य प्रायः खराब ही रहा करता है। अतः शायद ही कोई पत्र ऐसा मिला हो जिसमें उन्होंने इस विषय मे एकाध सतर न लिखी हो।

: १६ :

सेवा-भाव

साबरमती मे तो उनका यह नियम ही था कि शाम को प्रार्थना के पश्चात् आश्रम के प्रायः सब बीमारो का हाल उनके घरवालो या पडौसियो से, जो प्रार्थना में आते थे, पूछ लिया करते थे, सो भी तफसील से। क्या खाया-पिया, क्या व किसकी दवा चल रही है, आदि। फिर प्राय हर बीमार के लिए अपनी तरफ से कोई न-कोई उपयोगी सुझाव देते। किसीका समाचार नही मिलता या कोई ज्यादा बीमार होता तो खुद उसके घर जाकर देखते। एक बार इसी तरह एकाएक मेरी माताजी को देखने आगये। उनकी जाँघ में एक विषैला फोडा हो गया था। उस दिन शाम को उनकी देख-भाल में लगे रहने के कारण हम कोई प्रार्थना मे न जा सके तो वे लकडी हाथ मे लिये घर पर आ पहुचे। हम कोई इसके लिए तैयार नही थे। कमरे में सब चीजे अस्त-व्यस्त पडी थीं। मैं बडा शर्मिन्दा हुआ। बापू का आना माताजी के लिए तो आधी से ज्यादा बीमारी के दूर हो जाने के बराबर था। महात्माजी को रोगियो की सेवा-शुश्रूषा खुद करने मे बडा सन्तोष मिलता था। कुष्ट-रोगी परचुरे शास्त्री के घावो को वे खुद बडे चाव से धोते थे। इसे नारायण की सेवा ही समझते थे। एक बार वर्धा मे

कांग्रेस कार्य-समिति की मीटिंग बीच मे ही छोड कर परचुरे शास्त्री की परिचर्या के लिए सेवाग्राम जाने लगे तो जवाहरलालजी, जो उस समय शायद कांग्रेस के सभापति थे, गांधीजी पर बिगडे। झल्ला कर कहा "क्या स्वराज्य व कार्य-समिति से बढकर जरूरी काम सेवाग्राम में है ?" बापू ने दृढता के स्वर में कहा "है। मेरे लिए वह स्वराज्य से बढकर है।" वह उनके लिए अपने भगवान् की परिचर्या थी।

यदि हम जीवन के सब कार्यों को भगवान् की पूजा मानकर करने लगें, प्रत्येक व्यक्ति को नारायण का रूप समझ कर उसके साथ व्यवहार करने लगें तो वह कार्य कितना आनन्द व सन्तोषप्रद तथा वह व्यवहार कितना सहज, निर्मल व पवित्र हो जाय ? प्रत्येक कार्य व प्रत्येक व्यक्ति में हमारी दिलचस्पी कितनी बढ जाय ? 'अब तो जी उकता गया' ऐसा कहने या मानने का भी अवसर ही नही आ सकता। इस सिलसिले मे नाथद्वारा का एक बढिया प्रसग मुझे याद आ रहा है।

एक बार मैं उदयपुर से चित्तौड जा रहा था तो मावली स्टेशन पर नाथद्वारा की एक विधवा बुढिया मेरे डिब्बे में आई। जेल में मुझे श्रीमद्भागवत पढकर भागवत् धर्म समझने का अवसर मिला था। पुष्टि मार्ग मे भागवत्-ग्रन्थ को बहुत प्रधानता दी गई है। नाथद्वारा पुष्टि मार्गियो वल्लभ सप्रदाय-वालो का बहुत बड़ा तीर्थ है। तो सहज ही मुझे वहा के जीवन के बारे मे कुछ पूछताछ करने की उत्सुकता हुई। वैसे तीर्थस्थानो की आधुनिक दशा की आलोचना बहुत सुनी थी। खुद काशी में पाच साल विद्याध्ययन के लिए रहा था तो वहा के अनुभव भी थे। दूसरे तीर्थों की भी यात्रा के अवसर आये थे। अत भगवान् में श्रद्धा-भक्ति होते हुए भी, तीर्थों की मूल कल्पना का, उनकी पतित-पावनता का कायल होते हुए भी उनकी वर्तमान अवस्था व व्यवस्था के प्रति आलोचक दृष्टि ही मेरी थी व अब भी है। अत. नाथद्वारा के लिए मन में कोई उच्च भाव नही था। फिर भी कुतूहल-वश कुछ जिज्ञासा हुई।

बुढिया के एक विधवा वेटी थी। वह भी उसके साथ रहती थी। मैंने दोनो की दिनचर्या भी पूछी। कार्यक्रम जानना चाहा। बुढिया ने सुवह ५ वजे से रात के १० वजे तक का ऐसा कार्य-क्रम वताया कि कुछ मिनटो की भी गुंजाइश दूसरे काम के लिए नही थी। सारा काम ठाकुरजी की पूजा, अर्चा, शृंगार, भोजन शयन और विविध प्रकार की सेवा से सम्बन्ध रखता था। मैंने उससे पूछा कि तुम मा-वेटी की वातचीत व चर्चा के विषय क्या होते है? उसने कहा, "भैया, हम सुवह से रात तक ठाकुरजी की सेवा मे ही इतनी लगी रहती हैं कि चर्चा तो दूर, वातचीत करने की भी फुरसत नहीं मिलती। हमारे मन में चौबीसो घटे सिवा ठाकुरजी के दूसरा खयाल सहसा नही आने पाता।" मैं वुढिया की इस वात पर अविश्वास ही करता, यदि मैंने स्वयं सत्याग्रहाश्रम (सावरमती) में ऐसा ही सटा हुआ घना कार्यक्रम न देखा होता। वहा एक-एक मिनिट का और समय की पावन्दी का इतना खयाल रक्खा जाता था कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर दौड़ कर ही मनुष्य ठीक समय पहुच सकता था। फिर वुढिया ने सुवह से शाम तक के कामो की इतनी तफसील भी वताई कि उसमें अविश्वास की जगह तो नही थी। सारा वर्णन सुनकर मेरे मन ने कहा "धन्य है यह जीवन-क्रम, जिसमें चौवीसो घटे भगवान् का ही ध्यान रहता है! यह तो जाग्रत समाधि हो गई। भगवद्भाव और क्या हो सकता है? जिस लगन व चिन्ता से ये वुढिया मा-वेटी ठाकुरजी की सेवा करती थी, उसी प्रेम व भक्ति से सावरमती आश्रम के सेवक लोक-सेवा-कार्यों मे लगे रहते थे। ये बुढिया-वेटी मूर्ति-पूजा के माध्यम से, तो वे सेवक सेवा-कार्यों के माध्यम से उसी भगवद्भाव को पाते थे। ये दो प्रकार के भगवद्भक्त हुए। एक भगवान् की व्यक्तिगत सेवा-पूजा करता है, दूसरा उसके कार्यों मे अपना जीवन खपाता है। इस दूसरे मार्ग में दुखियो की सेवा का एक लाभ रास्ते चलते हो जाता है यह इसकी विशेषता है। इसीलिए गाधीजी इसपर याने अनासक्ति-पूर्वक सेवा-कार्यों में जीवन लगाने पर ज्यादा जोर दिया करते थे। अपनी काम-

नाओं व कर्म-फलों के प्रति अनासक्त हुए बिना भगवान् में सच्ची भक्ति हो ही नहीं सकती। एक की अनासक्ति से दूसरे में आसक्ति अपने-आप हो जाती है। मन को आसक्ति का कोई-न-कोई विषय चाहिए। ऐसा सर्व-मंगलदायक शान्ति-सुखकारक विषय एक-मात्र भगवान् ही हो सकता है।

: १७ :

वक्त की पाबंदी

बापू का समय-पालन व नियम-पालन तो जग-जाहिर है। उनका नाम ही पड गया था '१७ घन्टों का गुलाम'। एक रोज शाम को घूमते समय साथवालों से बात-चीत करते हुए कुछ देर हो गई तो उन्होंने दौडकर समय पर प्रार्थना में पहुचने का प्रयत्न किया। यह तो मैंने खुद देखा, पर और लोग कहते थे कि ऐसा कई बार हो जाता है।

आश्रम में कई बार संयुक्त भोजन के प्रयोग हुए। बापू मानते थे कि कौटुम्बिक जीवन से आगे सामाजिक या सामूहिक जीवन की ओर प्रगति करना चाहिए। यह उनके 'रामराज्य' की एक सीढी थी। इसके लिए जरूरी था कि सब लोग एक ही जगह आश्रम के भोजनालय में खाना खावें। इससे समय व धन की बचत के अलावा सामूहिक जीवन का अभ्यास भी होगा। लेकिन यह सब होना चाहिए समय-पालन, सुव्यवस्था व शुचिता के साथ। इस सारे कार्य-क्रम को गति देने व लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए खुद बापू ने भी संयुक्त रसोडे में भोजन करना शुरू किया। भोजन के समय दो घंटी लगाने का नियम तय हुआ। दूसरी घंटी तक जो भोजनालय में न पहुच सके उसे दूसरी पंक्ति के लिए बरामदे में इंतजार करना पडता। दूसरी घंटी के बाद रसोईघर का द्वार बन्द कर दिया जाता जिससे बाद में कोई आने न पावे। एक रोज मैंने देखा कि बापू पिछड गये। इत्तफाक से मैं भी पिछड गया था।

देखा कि बापू बरामदे में खड़े हैं। बरामदे मे बैठने के लिए कोई बेंच या कुर्सी भी नही थी। मैंने बापू से, दरअसल तो अपने पिछड़ने की झेंप मिटाने के लिए, विनोद करते हुए कहा "आज तो आप भी गुनहगारो के कटघरे मे खड़े हैं।" बापू ने खिलखिलाकर हसते हुए कहा "कानून के सामने सब बराबर होते हैं न...।" मैंने कहा "कुर्सी लाऊ ?" बोले "नही, सजा तो पूरी भुगतनी चाहिए। सच्चा आनन्द इसीमे है।"

एक बार उन्हे गुजरात विद्यापीठ किसी कमेटी की मीटिंग मे या ऐसे ही जरूरी काम से जाना था। समय पर कोई सवारी नही आई तो पैदल चल पड़े। जब देखा कि इससे तो पिछड़ जायगे तो रास्ते मे कोई साइकिल पर जाते हुए मिला, उससे साइकिल ले ली और उसपर सवार होकर समय पर गुजरात विद्यापीठ जा पहुचे।

मुलाकात के समय कभी एक सेकिण्ड की भी देर हो जाती तो फौरन टोकते और समय पूरा होते ही कहते "अब भाग जाओ। दूसरो का समय हो गया।"

: १८ :

आरोग्य बनाम सुन्दरता

रसोईघर में नौकर कोई नही होता था। पारी-पारी से सबको नियत काम करना पड़ता था। खुद बापू के जिम्मे भी समय-समय पर काम दिया जाता था और वे बड़ी तत्परता, ध्यान व रस के साथ उसे करते थे। एक बार वे टमाटर काट रहे थे। मेरी भी ड्यूटी उस समय थी। मैंने देखा कि बापू टमाटर बड़े टेढ़े-मेढ़े काट रहे थे जिससे उनके टुकड़ो की शक्ले बड़ी भद्दी हो जाती थी। मैंने सोचा, बापू तो सुघड़ता के बड़े प्रेमी हैं। इन बदशक्लो की ओर इनका ध्यान क्यो नही जाता ? मैंने विनोदी ढग से कहा "बापू, टमाटर काटना तो अभी आपको नही

आया। मालूम होता है, आज आपका मन और कही है।" बापू ने मुस्कराते हुए लम्बी 'हूं' की और बोले "अभी तुम लोगो को मुझसे टमाटर काटना सीखना है। तुम लोग सुन्दर शक्ले काटने मे यह भूल जाते हो कि टमाटर की आखो में (दबी जगहो मे) अक्सर कीडे होते है। बिना ज्यादा ध्यान से देखे बीजो में उनका पता नही लगता। अत टमाटर इन आखो को बचाकर काटने चाहिए। मैं इसी तरह बडे ध्यान से काट रहा हू। सुन्दरता और आरोग्य मे किसका चुनाव ठीक है?" मैने कहा "बापू, अब तो आपके सामने कान पकडना पडेगा।" और मैने अपने दोनो कान पकड लिये। बापू खिलखिला कर हस पडे।

: १६ :

सिपाही का धर्म

बापू के सामने आश्रम की कई छोटी-बड़ी समस्याए आती। उन्हे छोटी से-छोटी बातो की तरफ बारीकी से ध्यान दिये बिना चैन नही पडती थी। उनके हल करने के तरीके भी अद्‌भुत हुआ करते थे। उनके सामने सदैव दो बाते रहती कोई काम सत्य, अहिसा के सिद्धान्त के विपरीत न होने पावे। उसका हल ऐसा निकाला जाय जिससे राम-राज्य की कल्पना या सर्वोदय का उद्देश्य पूरा हो सके। बाहरी दबाव की अपेक्षा भीतरी गुणो या शक्तियो के विकास पर यह अधिक अव-लम्बित रहता है। अत वे व्यक्तियो से व्यवहार करते समय इस बात का बडा ध्यान रखते थे कि वह उनके बोझ से दब तो नही रहा है या दबकर तो किसी बात मे 'हा' नही कर रहा है। इसकी कई मिसालें हैं। अपनी जानकारी की कुछ मुख्य-मुख्य मिसाले यहा देता हू।

सन् १९२४ में महात्माजी बेलगाव-कांग्रेस के सभापति हुए। कांग्रेस का काम कैसे चलाना चाहिए, कांग्रेस के द्वारा रचनात्मक कामो को कैसे आगे बढाना चाहिए, इसका नमूना पेश करने के लिए खासकर वे सभा-

पति बने। उनके सभापति बनने से आश्रमवासियो के मन मे भी बेलगांव जाने का उत्साह हुआ। और साल तो केवल वही लोग काग्रेस में जाया करते थे जिनकी जरूरत वहा काम के लिहाज से हुआ करती थी। फालतू किसीका कही जाना, फिर वह बडी-से-बडी लुभावनी जगह भी क्यो न हो, बापू को पसन्द नही था। किन्तु इस बार तो खुद बापू ही सभापति होनेवाले थे और रचनात्मक कामो को प्रधानता मिलने वाली थी। अत. बहुतेरे उम्मीदवारो के नाम बापू के पास आ गये। बापू सोच में पड गये। किनको रोका जाय, किनको मजूरी दी जाय ? फिर खर्चे का भी सवाल था।

मैने सन् १९१४ में पहली बार लखनऊ मे काग्रेस का अधिवेशन देखा था। फिर १९२१ में अहमदाबाद वाला। लखनऊ के समय तो मै कानपुर रहता था। अत. पास ही लखनऊ चला जाना आसान था। अहमदाबाद के समय मै वही रहता था। अत शरीक हो जाना बडा सुलभ था। उसके बाद कभी काग्रेस में जाने की इच्छा नही हुई। एक तो इसका कारण यह था कि जो काग्रेस के प्राण थे, जहा सारी राष्ट्रीय व नैतिक शक्तियों का केन्द्र था, उन्ही चरणो मे जब पहुच गया, उनके सिद्धान्तो, आदर्शों, विचारो को समझने व पचाने का सुअवसर जब मिल गया तो काग्रेस के अधिवेशनो मे सिवा बहस व व्याख्यानो के और क्या विशेष सीखने जैसा था ? बापू के पास कौनसे गुण, शक्ति, योग्यता की कमी है जो दूसरे नेताओ से मिल सके ? इस तरह के मेरे विचार रहे। दूसरे बापू के एक उपदेश का मेरे मन पर जीवन-भर के लिए असर हो गया था। सन् १९२१ मे जब मै बापू के पास पहुचा ही था कि युवराज के स्वागत-बहिष्कार का आन्दोलन बडे जोरो से चल रहा था उसके लिए जगह-जगह स्वयसेवको की भर्ती हो रही थी। मेरी भी इच्छा हुई कि मै भी अपना नाम लिखाऊ। पर 'हिन्दी नवजीवन' का काम कर रहा था। बापू की इजाजत के बिना कैसे नाम लिखाऊ ? बडे उत्साह से बापू से पूछने गया। उन्होने कहा "हाल ही मे तो तुमने 'नवजीवन' का काम हाथ में लिया है। तुम्हारे भर्ती होने से इस काम

का क्या होगा ? अपना काम छोडकर दूसरे काम में पडना तो सिपाही का धर्म नही है। तुम्हें जेल जाना है तो 'नवजीवन' का काम करते हुए ही जेल जाना है। दूसरा खयाल छोड दो।"

इस उपदेश का असर भी मुझपर काम कर रहा था। इसके प्रभाव मे मैने बडे-बडे अवसरो को खो दिया। परन्तु आजतक जरा भी अफसोस नही हुआ। उलटे मन मे एक प्रकार का गौरव व अभिमान-सा लगता है कि मैने कुछ खोया नही सिपाही-धर्म का पालन करके श्रेय ही प्राप्त किया। किन्तु बेलगाव-काग्रेस के समय जाने के उत्साह को मै न रोक सका। मैने मन मे निश्चय ही कर लिया था कि अबकी बार जाऊगा। जाने से कुछ दिन पहले एक बार सुबह की प्रार्थना के समय बापू ने बताया कि किस तरह के लोगो को बेलगाव-काग्रेस में जाना चाहिए। उनमे मेरा समावेश कही नही होता था। फिर उन्होने प्रश्न किया कि कौन-कौन लोग बेलगाव-काग्रेस में जाना चाहते है। कई लोगो ने अपने नाम पेश किये। मै दुविधा मे पड गया। सिपाही-धर्म जोर मार रहा था कि बापू ने मुझसे पूछा "हरिभाऊ, तुम्हारा क्या विचार है ?" मै देख रहा था कि कई नाम आ जाने से बापू कुछ चिन्ता में पड गये है और कोई रास्ता ढूढ रहे है। मैने उसी क्षण निश्चय कर लिया कि नही जाना चाहिए और बापू से कहा "बापूजी, मेरा विचार तो जाने का हुआ था। अहमदाबाद-काग्रेस के बाद मैं किसी अधिवेशन मे नही गया। लेकिन आपने जो चोखटा बनाया है, उसमे मेरे जाने की कोई गुजाइश नही है, अतः मैने न जाने का निश्चय कर लिया है।"

सुनते ही बापू की खुशी की सीमा न रही। उन्हें हल मिल गया और दूसरे फालतू जानेवालो को रोकने का सहारा भी। बस, फौरन कहा "तुम्हारा निश्चय बहुत ठीक है।" और दूसरो को सम्बोधन करके कहा "हरिभाऊ की तरह सबको सोचकर अपना-अपना निर्णय करना चाहिए।" एक खासा व्याख्यान दिया और उसके जादू से कइयो को बेलगाव जाने से बचा लिया। न किसी पर रुकने का दबाव डाला,

न किसीको स्पष्ट इन्कार किया। सबकी आत्मा को जाग्रत करके निर्णय कराया। वे बाज-बाज को इन्कार भी कर सकते थे और कई बार मना कर भी देते थे, किन्तु व्यक्तिगत रूप से। यहा तो कई नामो के व्यक्तियो का सवाल उठ खडा हुआ था। उसके लिए उन्हे रोक की एक लकीर खीचनी थी और एक मिसाल भी चाहिए थी।

: २० :

बापू की कुशलता

आश्रम के तपस्वी व्यवस्थापक श्री मगनलाल गांधी का बिहार मे एकाएक स्वर्गवास हो गया। गाधीजी को बडा धक्का लगा। उन्होने श्रीमती सन्तोषबहन (मगनभाई की धर्मपत्नी) से कहा "विधवा तुम नही, मै हुआ हू। शोक करने का मुझे अधिकार है, तुम्हे नही, जबतक कि मै बैठा हू।" और उस क्षण से महीनो मगनभाई के घर पर ही रहे।

अब एक बडी समस्या खडी हुई। मगनभाई की इच्छा थी कि बिहार मे उनका अधूरा काम राधाबहन (उनकी सुपुत्री) करे। सन्तोषबहन उसको अपने पास ही रखना चाहती थी। पूज्य बा का इसमे समर्थन था। राधाबहन, जहातक मुझे याद पडता है, मगनभाई की अन्तिम इच्छा को पूर्ण करना चाहती थी। बापूजी खुद भी दिवगत आत्मा को सन्तोष देने के पक्ष मे थे, परन्तु सन्तोषबहन तथा बा के विरोध के कारण बडी दुविधा मे पड गये। यदि बिहार भेजते है तो सन्तोषबहन की नाराजगी और उनके यह समझ लेने का अन्देशा था कि बापूजी मेरे दुख को नही समझ पाये। नही भेजते है तो मगनभाई की आत्मा और उनके अधूरे काम का खयाल उन्हे सता रहा था। अब इसका निर्णय उनके सिवा कौन करता ? राधाबहन पर वह छोडा नही जा सकता था, क्योकि जिसके निर्णय में बापू को इतना पसोपेश होता था उसका निश्चय करना उनके लिए और भी मुश्किल था। बापूजी बडे

सोच-विचार मे पड गये। सिद्धान्त का प्रश्न होता तो बापूजी उसको चुटकियो मे हल कर देते, परन्तु यहा भावनाओ का संघर्ष था। इसमें धर्माधर्म का प्रश्न नही था। आखिर उन्हे एक तरकीब सूझी। पैसा उछालकर इसका फैसला कर लिया जाय। यह एक प्रकार से दैवी निर्णय होगा। लोगो ने आलोचना की, "यह तो पलायन-वृत्ति हुई। अन्धविश्वास हुआ। बापू के लिए यह शोभा नही देता।" बापू ने प्रार्थना में प्रतिपादन किया कि जिसमे सिद्धान्त या धर्माधर्म का प्रश्न खडा न होता हो, भावनाओ का संघर्ष हो, वहा इस तरह चिट्ठी डालकर या पैसा उछालकर फैसला कर लेना बुरा नही। इसमे किसीके भला-बुरा मानने की सम्भावना नही रहती। सबके चित्त के समाधान की ही गुजाइश रहती है।

× × ×

बापू के एक साथी की लडकी से दोष हो गया। बापू को बडी चोट लगी। अब लडकी के सगाई-विवाह का सवाल सामने आया। बापू ठहरे धर्म के उपासक। फिर दुविधा खडी हुई। यदि वर-पक्षवालो को कुछ नही कहते हैं तो उन्हे धोखा देने-जैसा हुआ। यदि कहते हैं तो यह आशका थी कि कही वे सम्बन्ध नामजूर न कर दें। लड़की से उन्होने प्रायश्चित्त करा लिया था। जहा तक मुझे याद है, खुद भी उपवास करके प्रायश्चित्त किया था। आगे ऐसी गलती न करने की प्रतिज्ञा लडकी ने की थी। इस तरह शुद्ध हो जाने से बापू का मन हल्का तो हो गया था, परन्तु वे बडे असमजस में पड गये थे। आखिर उन्होने सत्य बात कह देने का सकल्प किया। न होगी शादी तो लडकी कुंवारी ही रहेगी, पर असल बात छिपाना ठीक नही। साधारण लोग उलटा ऐसे अवसरो पर लडकियो के ऐब छिपाकर गुण-ही-गुण बताते है। सोचते है कि किसी तरह लडकी की सगाई हो जाय, पीछे ससुराल-वाले भले ही रोते रहे। परन्तु बापू तो धर्म-पालक, नीति-निर्धारक व सत्य पथ-प्रदर्शक थे। 'या निशा सर्व भूताना तस्यां जागर्ति संयमी' के नमूना थे। उन्होने भावी वर को सब बाते बता दी और कहा, "यह

सम्बन्ध वैसे सब तरह ठीक है; परन्तु इसका निर्णय तुम्हें अपनी अन्तरात्मा से पूछकर करना है।" लड़के ने बापू के विचारों को पसन्द किया और शादी हो गई। बापू में इस तरह की ऐसी कुशलता थी, जो उनकी सत्य और अहिंसा की अहर्निश साधना से प्राप्त हुई थी, और होती रहती थी।

: २१ :

पशु-पक्षियों तक के प्रति अहिंसक

आश्रम में खेती होती थी, बगीचा भी था, जिसमें फलों के वृक्ष-पौधे लगाये गये थे। बापू सुघड़ता व कला-सौन्दर्य के रसिक थे, परन्तु सबका आधार 'उपयोगिता' रहता था। केवल शोभा-शृंगार उन्हें पसन्द नहीं था। अतः आश्रम में फूल-पौधों और बेलों की अपेक्षा फल-पौधों की ही अधिकता थी। चूंकि खादी-सम्बन्धी सब प्रक्रियाएं शुरू से अखीर तक आश्रम में करना और सिखाना चाहते थे, अतः कपास की खेती भी शुरू हुई। आश्रम में बन्दरों की चढाई अक्सर होती रहती थी। वे फलों व खासकर कपास के बौंडों को खा जाया करते थे। उन्हें कैसे भगाया व रोका जाय? इधर नुकसान को रोकना, उधर बन्दरों के प्रति हिंसा न होने देना। पत्थर मारने से उन्हें चोट लगती थी। खाली हो-हल्ला मचाने से वे मानते नहीं थे। अतः एक अहिंसक उपाय निकाला। ऐसे हलके तीर, जिनकी नोक पर रुई, कपड़ा या फूल बंधे हों, चलाये जाय, जिनसे बन्दरों को धक्का तो लगे, परन्तु चोट न पहुंचे, जख्म न हो जाय। पशु-पक्षियों तक के प्रति बापू अहिंसक रहना चाहते थे।

आश्रम में सांप भी निकला करते थे। और जगह लोग उन्हें देखते ही मार डालते हैं। अफ्रीका में तो सांपों और वहां के निवासियों का परस्पर इतना बैर है कि सांप आदमियों को देखते ही काटने को

झपटता है और आदमी भी साप को देखकर जिन्दा नही छोडता। दोनो पक्षो में प्रवल हिसा पाई जाती है। साबरमती आश्रम में दोनो पक्षो मे अहिसा का भाव पाया गया। वहा साप को मारने की मनाही थी, किन्तु साप निकलते बहुत थे। साबरमती आश्रम जहा बसा है वहा पहले वीरान जमीन थी, जीव-जन्तुओ का असली घर था। उनकी जन्म-भूमि मे आश्रमवासी घुस गये और अपना डेरा जमा लिया। तो वे बिच्छू साप, छछूदर, घूस, चीटी, दीमक आदि अपनी लडाई किसी-न-किसी रूप मे जारी रखते ही थे, परन्तु आश्रमवासी थे अहिसावादी। बिच्छुओ को पकडकर छोड देते थे। वह आसान भी था, परन्तु सापो का क्या किया जाय ? यदि उन्हे मारते नही है तो उनके डस लेने और उससे मृत्यु हो जाने की सम्भावना थी। सो उन्हे भी पकडकर दूर जगल या नदी-नालो मे छोड आने का उपाय निकाला गया। साप को पकडने के लिए कम-से-कम दो आदमी जरूरी होते थे। एक उसे लाठी से दबा देता था। जब वह फन उठाता तो दूसरा उसमे फदा डालकर उसे फाद देता था। फदा बडा ही आसान था। एक लम्बी बास की लकडी के सिरे पर मामूली रस्सी का फदा डाल देते थे, रस्सी खीचते ही साप का फन उसमे दब जाता था। फिर उसे इस एहतियात से उठाते थे कि साप को बास पर लिपटने का अवसर नही मिलता था। वह सीधा जमीन की तरफ लटकता रहता था। यह तरीका सभी जगह आजमाने लायक है। इस अहिसा-भाव का नतीजा यह था कि साप भी आश्रमवासियो का लिहाज करते थे, उन पर झपटते नही थे। वहा साप के काटने के एक-दो ही उदाहरण देखने में आये। उन्होने काटा भी अहिसाभाव से ही था, क्योकि कोई मरा नही।

: २२ :

आश्रमियों की अहिंसा

सुनते है कि चोर-लुटेरो के भी कुछ नीति-नियम होते है। वे शरणागत को नही लूटते-मारते। साधु-सन्तो के यहा चोरी नही करते। किन्तु कलियुग मे, और खासकर अग्रेजी राज के बदौलत, यहा प्राय सभी प्रथाए बिगड गई। आश्रम मे चोरी के हमले होने लगे। वहा चौकी-पहरा तो रहता नही था। कई लोग ताले भी नही लगाते थे। 'रामराज्य' का प्रयोग करना था न! जो चुरा ले जाते थे, उनके खिलाफ, जहा तक मुझे याद पडता है, पुलिस या थाने में शिकायत नही की जाती थी। तो यह प्रबन्ध हुआ कि आश्रमवासी बारी-बारी से रात भर पहरा दे। इत्तफाक से एक चोर पकड मे आ गया। रात में पकडा गया तो उसे एक कोठरी मे बन्द कर दिया गया। यो मारने-पीटने की तो मनाही थी, पर पकडने की धक्का-धूमी मे उसे साधारण चोट या खरोच आ गई थी। मुझे यह याद नही आता कि बापू उन दिनो वहा थे या नही, पर जो भी वहा थे, मगनलालभाई तो थे ही, उन्होने सुबह उसे छोड दिया और उसे जो कुछ खरोच वगैरह लगी थी, उसका दुख कई आश्रमवासियो को हुआ। फिर बापू ने अपनी सही से आप पास के गाववालो के नाम एक पत्र छपवाया था जिसमे चोर-डाकुओ को उनके धन्धे की बुराई बताई थी और गाववालो को आश्रम के साथ चोरी रोकने के प्रयत्न में सहयोग की अपील की गई थी। यह विचार भी चला था कि आस-पास के गावो में जाकर प्रचार द्वारा वातावरण ठीक किया जाय। बापू को कोरे निषेधात्मक या

विध्वसात्मक कामो से सतोष नही होता था। वे कई बार जरूरी हो जाते थे। आपद्धर्म के तौर पर वे किये जाते थे, परन्तु वास्तव में वे रचनावादी-शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। जबतक किसी लक्ष्य के लिए विध्वसात्मक काम के साथ रचनात्मक प्रवृत्तियो का योग नही होता था तबतक वे उसे अधूरा, कच्चा काम समझते थे। 'सर्वोदय' या 'रामराज्य' का दारोमदार निषेधक विध्वसात्मक प्रवृत्तियो पर उतना नही है जितना शान्तिपूर्ण रचनात्मक प्रवृत्तियों पर है। वह मुख्यत भीतरी विकास की वस्तु है, बाहरी तोडफोड या जोड-तोड की नही।

× × ×

एक बार जगली गायो ने आश्रम पर हमला कर दिया। वे या तो ठेठ जगली थी या घर से भागकर जगल में चली गई थी। उनकी शक्लें देखकर ही डर लगता था। उनके साथ घरेलू गायो की तुलना करने से मालूम हो जाता है कि मनुष्य ने पशुओ को पालकर अहिसा की दिशा में कितनी प्रगति की है। सवाल यह आया कि इनके हमलो को कैसे रोकें? पास जाना तो दूर रहा, कुछ दूर खडे रहने की भी सहसा कोई हिम्मत नही करता था। सोचा गया कि इन्हे पालतू बनाया जाय। आश्रम के पश्चिम की ओर तारो का एक अहाता बनाया गया और तरकीब से उन्हे उसके अन्दर पहुचा कर फाटक बन्द कर दिया गया। उनके लिए घास, चारे, पानी का इन्तजाम कर दिया गया। मुझे जहा तक याद पडता है, उसमें से फिर एक-दो गाये आश्रम की गोशाला में आ भी गई थी। जहां साप, बिच्छू, चोर को मारने की मुमानियत थी, वहा गोमाता पर तो हाथ उठाने का सवाल ही नही था।

खेती में जो जीव-जन्तु मर जाते हैं, उनको बचाने की दृष्टि से भी बापू सोचा करते थे। परन्तु अन्न की उत्पत्ति में उन्होने उसे अनिवार्य समझकर इतनी हिसा को क्षन्तव्य मान लिया था; क्योकि खेती के द्वारा जगत् का पालन-पोषण होता है।

× × ×

आश्रम के अंदर एक कुएं के पास पानी का एक छोटा-सा हौज था। एक सांप मेंढक खाने के लालच से वहां पहुंचा। मेंढक तो उसके मुंह की पकड़ में आ गया; पर सांप भी हौज में गिर पड़ा। मेंढक टर्र-टर्र करके बहुत छटपटाता था कि उसकी पकड़ से छूटे, पर काबू नहीं चलता था। इधर सांप भी पानी में परेशान था। मेंढक को छोड़ भी दे तो वह पानी के बाहर नहीं आ सकता था। एक तरफ मेंढक के खाने का लोभ, दूसरी तरफ प्राण बचाने का लोभ। दो लोभों के जाल में वह बुरी तरह फंस गया था। इधर मेंढक का करुण टर्र-टर्र नहीं सुना जाता था तो उधर सांप पर भी दया आती थी। कुछ आश्रम-वासी सोचने लगे कि क्या किया जाय, जिससे दोनों की जान बच जाय। सांप के निकाल लेने पर भी मेंढक का उसके जबड़ों से छुड़वाना मुश्किल था। यदि मेंढक को मरने देकर भी सांप को बचाते हैं तो हमलावर की रक्षा करके बेचारे निर्दोष मेंढक को मरने देने की स्थिति स्वीकार करते हैं। जो दया का पात्र नहीं, उसे तो बचाना और जो दीन, असहाय, हमले का शिकार हो गया था, उसे मरने देना, यह कहां का न्याय? ऐसे धर्म-संकट में वे पड़ गये थे। बाद में क्या निश्चय किया, वह मुझे याद नहीं है, परन्तु मेरे इस घटना के उल्लेख के प्रयोजन की सिद्धि के लिए इतना कहना काफी है कि आश्रम के लोग अपने जीवन में कहां तक अहिंसा की साधना करना चाहते थे।

: २३ :

सबके प्रति सद्भावना

एक बार बापू के सामने एक अजीब समस्या पेश आई। बापू के एक परम मित्र का लड़का आश्रम में रहता था। वे बड़े धनाढ्य थे। उन्होंने आश्रम के पास ही अपना एक बंगला बनवा लिया था। उसी में वह रहता था। लड़का बड़ा सीधा, भोला पर 'चक्रम्' था। उसका

दिमाग भी ऐसा वैसा ही था। धन को देखकर एक लडकी के माता-पिता उससे सगाई करना चाहते थे। लड़की को भी उन्होंने राजी कर लिया था। कुछ लोग इसके विरोधी भी थे। लडका शरीर और दिमाग से इस योग्य नही जचता था कि आश्रम से सम्बन्धित व्यक्ति की लड़की उससे विवाही जाय। मामला बापू के पास पहुचा। इधर परम मित्र का लडका, जो बापू की संरक्षता में ही रहता था। उधर लडकी के माता-पिता भी उनकी छत्रच्छाया में। फिर लडके की योग्यता नहीं, पर धन का लोभ इस सम्बन्ध के मूल में था। एक-से-एक अनर्थ-परम्परा। बापू की दुविधा का पार नही। पर बापू का पथ सत्य-अहिंसा के आदर्श से हमेशा उज्ज्वलित रहता था। उन्होने माता-पिता को लडके की सारी परिस्थिति समझाई। उन्हे परावृत्त करने का प्रयत्न किया। लडके के अभिभावको को भी समझाया। उन्हे लडकी पाने का लोभ था, क्योकि लडके को लडकी मिलना मुश्किल था। अतः वे घर आई लक्ष्मी को कैसे छोडें? इस धर्म-सकट में से बापू ने बडी खूबी से रास्ता निकाला। उन्होंने सोचा, असली बात लडकी के सुख-दुःख की है। हमारा काम दोनो पक्ष को सही मार्ग दिखाने का है। लडकी खुद भी अपने बुरे-भले का विचार कर सकती है। उसको निर्णय के लिए हमने काफी विचार-सामग्री दे दी है। पहले वह खुद अपने लिए सोचे व फैसला करे। वह चाहती ही हो कि इस लडके से शादी करदी जाय, उसके परिणाम को भुगतने की उसकी तैयारी हो तो हमें आशीर्वाद दे देना चाहिए। आखिर में लडकी की शादी उसके साथ हो गई। जिसके सामने कोई सिद्धात और आदर्श स्थिर होता है, उसे ऐसे पेचीदा अवसरो पर रास्ता मिलने में ज्यादा कठिनाई नही होती। सबके प्रति शुभ की भावना रहने से यह काम और सुगम हो जाता है।

: २४ :

साफ नीति

गांधीजी सबकी भली-बुरी सब बातें बड़ी शांति से सुनते थे। व्यक्तियों की एक-दूसरे के खिलाफ जो शिकायतें होती थी, उनमें वे अक्सर दोनों का सामना करके या तो निपटारा व समझौता करा देते थे या दोनों को उनकी त्रुटियां बड़ी मिठास से समझा देते थे। कोई उनसे जो कह जाता था, उसपर विश्वास रखने की उनकी प्रवृत्ति थी। जबतक किसीके खिलाफ कोई इल्जाम साबित न हो जाय तबतक उसके साथ अपराधी का-सा बर्ताव नही करते थे, न अपने व्यक्तिगत व्यवहार में कोई फर्क आने देते थे। कटुता तो उन्हे छू भी नहीं गई थी। इस तरह की कुछ घटनाएं मुझे याद आ रही है।

एक बार राजस्थान के एक नेता बापूजी के पास पहुचे। पहले वे श्रद्धेय स्व० जमनालालजी बजाज के साथ मिलकर काम करते थे, बाद में नीति-विषयक मतभेद हो जाने से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से काम करने लगे थे, फिर भी यह महसूस करते थे कि जमनालालजी का सहयोग मिले तो ठीक रहे। इसी उद्देश्य से वे साबरमती गये थे। बापूजी ने उसकी सब बातें ध्यान से सुन ली। तब उन्होंने जमनालालजी को बुलाया। कहा, "यह तुम्हारे साथ सहयोग चाहते है। कहते हैं, अब मेरा आपकी नीति व सिद्धातों में पूरा विश्वास हो गया है। मैंने इनसे कहा है कि मुझे इस बात की खुशी है। आप अब अपना नया विश्वास एक लेख या वक्तव्य द्वारा लोगो पर प्रकट कर दें, जिससे आपका मार्ग साफ हो जाय और जमनालालजी का सहयोग

मिलने में भी कठिनाई न रहे। सो तुम्हारा इस सम्बन्ध में क्या कहना है ?"

जमनालालजी की आदत नही थी कि खामखा किसीकी शिकायतें करते। फिर बापूजी का तो ज्यादा-से-ज्यादा बोझा अपने पर लेने की भावना रखते थे, सो ऐसी शिकायतें कर-करके उनका काम क्यों बढ़ाते ? वैसे भी जहां तक होता था, खुद ही ऐसे मामले निवटा दिया करते थे। उन्होंने अबतक इन नेता से अपने मतभेद की शिकायत तो दूर, जिक्र तक बापू से नही किया था। अब जब फिर से सहयोग का प्रश्न सामने आया तो उन्होंने तफसील से अपने मतभेद के कारण खुलकर उनके सामने रख दिये। महात्माजी को आश्चर्य हुआ व उन्होंने कहा, "ये सब बातें तुमने मुझसे आज तक नही कही। लेकिन अब जब इनके विचार व नीति बदले हैं तो पुरानी बातो को भूलकर इनसे सहयोग करना ठीक है।" जमनालालजी शायद हिचकिचाये तो, पर बापू का प्रस्ताव मान्य करने-जैसा ही था। उन्होंने कहा, "इनका वैसा वक्तव्य निकल जाय तो फिर मुझे कोई आपत्ति नही।" उन्होंने उक्त प्रसग को लेकर मुझसे कहा था कि मैं तो अपने जीवन मे ऐसी साधना करना चाहता हू कि किसीसे मेरा वैर-भाव न रहे और जो मुझसे किसी कारण दूर पड गये हैं, वे सब नजदीक आते जावे। बापू की अहिंसा से मैंने यही सीखा है। पीछे कुछ विचार करने पर उन नेता ने वक्तव्य नही निकाला, इसलिए वह सहयोग न हो पाया।

: २५ :

शरणागत-वत्सल

बीकानेर में स्व० सर गगासिहजी बीकानेर-नरेश के समय में स्व० श्री खूबरामजी सराफ तथा दूसरे कुछ व्यक्तियो पर राजनैतिक मुकदमा चल रहा था। मेरे एक मित्र ने बीकानेर डिफेंस कमेटी बनाई थी।

राजस्थान का सेवक होने के नाते मेरी भी दिलचस्पी उसमें थी ही। महाराजा बीकानेर पर इधर-उधर के जोर पड चुके थे। मुकदमे ने काफी हलचल पैदा कर रक्खी थी। उस आग के आस-पास की रियासतो में फैल जाने का अन्देशा था, अत खुद पोलिटिकल एजेन्ट महाराजा साहब से कह चुका था, पर महाराजा गगासिह अपने ढग के बडे तगडे आदमी थे। आगे जाकर तो उन्होंने काग्रेस के सत्याग्रह-आदोलन को दबाने की पूरी योजना बनाकर वायसराय को भी भेजी थी। उनके दकियानूसी विचार जग-जाहिर थे। उन्होने पोलिटिकल एजेण्ट की भी दाद नही दी थी। हमारे मित्र ने सुझाया कि महात्माजी की सहायता लेनी चाहिए। चुनाचे मै उन्हे अपने साथ लेकर महात्माजी से वर्धा में मिला। उनके दरवाजे जाकर कौन निराश लौटा है। फिर उनका ही अपना एक सिपाही गुहार लेकर गया हो। उन्होने तुरन्त बीकानेर महाराजा को पत्र लिख दिया और हम दोनो को सचेत कर दिया कि यह समाचार प्रेस मे न आने पाये। मैने तो किसी निजी मित्र तक से उसका जिक्र नही किया, क्योकि मै उस समय की नाजुक परिस्थिति व महात्माजी के आदेश के महत्व को अच्छी तरह समझता था पर मेरे मित्र इतना सयम न रख सके। उन्होने अखबारवालो से तो कुछ नही कहा, पर एक निकटवर्ती मित्र से कह दिया। इसका सार्वजनिक उपयोग न करें, यह सूचना देना भी शायद वे भूल गये। उन्होने एक तीसरे मित्र से जिक्र किया और मेरे अजमेर पहुचने तक मैं क्या देखता हूं कि अखबार मे वह खबर छपी पडी है। मेरे तो सिर पर मनो ठडा पानी पड गया। अब बापू को क्या मुंह दिखावेंगे ? इसका न जाने क्या असर होगा ? इधर हमारे मित्र को जब मालूम हुआ कि यह खबर तो अखबारो में आ गई तो वे भी बिना मौत के मर गये-से हो गये। अब उन्हें अपनी असावधानता खाने लगी। उन्होने फौरन महात्माजी को लिखा कि कसूर हरिभाऊ का नही है, मेरा है। बावजूद आपकी चेतावनी के मुझसे बडी भूल हो गई। इधर मैंने बापू से माफी मागी। बापू मुझपर बहुत बिगडे। मैं तो सामने था नही।

शायद महादेवभाई थे। उन्होंने मेरा पक्ष लेते हुए दबी जबान से कहा, "बापू, इसमें हरिभाऊ निर्दोष हैं।" बापू ने कहा, "मगर मैं दूसरों को क्या जानूं! मैं तो हरिभाऊ को ही जिम्मेदार मानता हूं।"

इस सवाद की खबर जब मुझे लगी तो मैं सीधा वर्धा पहुंचा। बापू तो शरणागत-वत्सल ठहरे। जब कोई बिना लाग-लपेट के अपनी गलती उनके सामने कबूल कर लेता था तो वे उसकी हर तरह रक्षा करते थे और एक पिता के ममत्व से उसको छाती से लगाकर सही रास्ता बताते थे। मैंने अपनी जिम्मेवरी पहले ही कबूल कर ली थी। अब तो मैं उसका प्रायश्चित्त उनसे पूछने आया था। उन्होंने बड़े दुखी स्वर से मुझसे कहा, "हरिभाऊ, तुम्हारे मित्र यह नही जानते कि उनका हित किसमें है। अब इस खबर के जाहिर हो जाने से बीकानेर-महाराजा उन्हे छोडते होगे तो नही छोड सकेंगे। तुमको पता है कि पोलिटिकल एजेण्ट को वे नाही कह चुके थे। यह बात प्रकट न होती तो मेरे पत्र के असर से तुम्हारा काम बनने की सभावना थी। अब जो शख्स पोलिटिकल एजेण्ट के कहने से मुन्जिमो को न छोड़े, वह गाधी के कहने से छोड दे तो उसे गद्दी ही छोड़नी पड़े। पोलिटिकल एजेन्ट उन्हे खा जायगा। अपने मित्रो के साथ, जिन्हे तुम्हारे मित्र छुड़ाना चाहते है, अनजान मे कैसा शत्रु का काम किया है? खैर, अब इसका प्रायश्चित्त तो यही है कि आगे तुम मुझसे यह जानने की कोशिश न करना कि मैं इस विषय में क्या कर रहा हूं। तुमसे कहकर मैं दुबारा जोखिम उठाना नही चाहता।" यह प्रायश्चित्त करके या सजा पाकर मैं अपना-सा मुह लेकर घर लौटा।

: २६ :

आग्रही, पर एकांगी नहीं

जोधपुर के एक कार्यकर्त्ता थे वडे सच्चे, नेक और व्रत-संयम पर श्रद्धा रखनेवाले। ब्रह्मचर्य साधन की बड़ी उत्सुकता उन्हें थी। विवाहित थे। विवाह हुए दो-चार साल ही हुए होंगे, परन्तु उन्होंने ब्रह्मचर्य से रहने का नियम बना लिया। ईमानदारी से उसके पालन की कोशिश भी करते थे; परन्तु एक बात से वडे परेशान थे उनकी पत्नी का सहयोग नहीं मिला था। उन्हें बापू का एक वचन याद था कि दम्पती में से यदि एक भी पक्ष चाहे तो दूसरे की राह देखे विना ब्रह्मचर्यव्रत ले सकता है। इसके अनुसार वे चल रहे थे। परन्तु वेचारी धर्मपत्नी की वडी वुरी दशा थी। जबरदस्ती के इस संयम से भीतर-ही-भीतर उसका मन कुण्ठित होने लगा। आखिर वह खब्ती-सी हो गई। शायद हिस्टीरिया भी हो गया था। उसकी शक्ल देखते ही तरस आता था। चेहरा उदास, आंखें शून्य में बदहवास-जैसी दीखती थीं। वे भाई बड़ी दुविधा में पड़े। मुझसे सलाह लेने आये। मैंने सीधे-सादे ढंग से व्यावहारिक सलाह दी कि आपको गृहस्थ-जीवन ही व्यतीत करना चाहिए। यह ब्रह्मचर्य आपको फलेगा नहीं। कुछ समझाया भी, पर बात उनके गले न उतरी। तब मैंने सुझाया अच्छा, बापूजी से पूछ लो।

इत्तफाक से थोड़े ही दिनों में बापू अजमेर स्टेशन से गुजरे। शायद अहमदाबाद जा रहे थे। अजमेर से ब्यावर स्टेशन तक मैंने उन दम्पती को बापू से बातचीत करने का अवसर दिला दिया। मैं भी मौजूद

था ही। मुझे अपनी सलाह के औचित्य पर विश्वास था; परन्तु उत्सुकता थी कि बापू क्या सलाह देते हैं। मुझे बड़ा आनन्द हुआ, जब देखा कि बापू ने भी उन्हें ठीक वही सलाह दी, जो मैंने दी थी। मगर बापू की एक दलील बड़ी लाजवाब थी। वही काम कर गई। उन्होंने कहा, "तुम्हारा ब्रह्मचर्य मुझे कच्चा मालूम होता है।" दोनों पति-पत्नी बोले, "नहीं, जब से लिया है, तब से बिलकुल भग नहीं हुआ है।" बापू बोले, "ठीक है, मगर उसका असर तुम्हारे (पत्नी के) मन पर अभी तक नहीं हो पाया। सच्चे ब्रह्मचर्य का यह परिणाम अवश्य निकलना चाहिए कि जो उसके सम्पर्क मे आवे उसका मन विकारों की ओर से फिर जाय। यह तो, चौबीसो घटे तुम्हारे साथ रहती है, फिर भी व्याकुलता से गृहस्थ-जीवन चाहती है, तो तुम्हारे ब्रह्मचर्य मे जरूर कमी है और तुम्हें अपना आग्रह छोड़कर इसको सतोष देना चाहिए।" पत्नी का चेहरा खिल गया। उन भाई को भी ऐसा लगा कि एक परेशानी से छूटे।

बापू आग्रही तो थे, पर एकागी नहीं थे। एक वैज्ञानिक की तरह वे अपने या दूसरो के प्रयोगो को बड़ी बारीकी से देखते थे और उनके परिणामो पर से उनकी गहरी छान-बीन करते थे। इसीसे बड़े-बड़े और कुछ तो भयकर समझे जानेवाले प्रयोगो से उन्हे सदैव बल, स्फूर्ति व प्रगति मिली है। गाड़ी कहां अटक रही है, वह फौरन भाप लेते थे और अधिकारी को देखकर वैसी सलाह उसे देते थे।

: २७ :

विरोधी को जीतने का अद्भुत जादू

बापू में सामने वाले विरोधी को आनन-फानन में जीत लेने का अद्भुत जादू था। अजमेर के मेरे एक आर्यसमाजी मित्र बापू के बडे आलोचक थे। बापू के प्रति उन्हें श्रद्धा तो कम नही थी, परन्तु उनके विचारो, खासकर अहिंसा-सम्बन्धी विचारो को हानिकर मानते थे। बड़े स्पष्टवादी और मुहफट थे। अक्सर कहा करते थे कि महात्माजी से मेरी भेंट करा दो तो मैं उन्हे खरी-खरी सुनाऊगा। मैं 'हा-हा' तो कर दिया करता था, पर मन में डरता भी था। सयोग से एक दिन बापू अजमेर से गुजरे और हम लोग स्टेशन पर उनके दर्शनार्थ गये। वे मित्र भी आ पहुचे। मुझसे उनके सामने ही कहा, मेरा परिचय करा दो।" अब तो मुझे बापू से कहना ही पडा, "बापू, ये हमारे आर्यसमाजी मित्र है। बडे दबग व आपके विचारो के आलोचक है। बहुत बार आपसे मिलने के लिए इन्होने मुझे कहा है।"

बापू (हसते हुए) "हा, हा, जरूर। इनकी बाते तो जरूर सुनूगा।" मित्र डिब्बे के अन्दर पहुचे व खडे-खडे ही अपनी बौछार शुरू की। बापू सुनते रहे। उन्हें कुछ कहने का अवसर नही मिला था कि गाडी ने सीटी दी। मित्र की बात भी अधूरी रह गई। वे स्टेशन पर उतर पडे।

मैं बापू के साथ ट्रेन में आगे गया। मित्र के अक्खडपन पर मन में झेंप रहा था। अपनी झेंप मिटाने के लिए मैंने अपराधी की तरह कहा, "बापू, मैं जानता था कि ये आपको खरी-खोटी सुनावेंगे, मगर"

बीच में ही बापू, जैसे मेरी झेंप को भापकर, बोले, "मगर मुझे तो अफसोस है कि ज्यादा वक्त नही था, नही तो मैं उनकी बाते और भी सुनता। उन्हें पूरा समय देता।"

मैं सकपका गया। बापू को मैंने कितना छोटा मान लिया था!

: २८ :

मीठी चुटकियाँ

बापू बडी मीठी चुटकी लिया करते थे। वह नसीहत से खाली तो होती ही नही थी। सामनेवाले को जाग्रत करने का यह अहिंसात्मक तरीका है। मैं आश्रम में रहा था, बापू के ही आदेश से राजस्थान में काम करने आया था। उन्हे आश्रम-जीवन के अनुकूल ही मेरा जीवन देखने की अपेक्षा थी। मै भी प्रयत्न तो ऐसा ही करता था; परन्तु एक बार बडी मुह की खानी पडी। मैं पुष्कर गया हुआ था सपरिवार। उस समय मेरे एक ही सन्तान थी शकुन्तला। वह चार-पाच साल की होगी। मेरी अजानकारी मे मा ने उसे कान के बुन्दे ला दिये थे। उन दिनो वे नये-ही-नये चले थे। पुष्कर में शकुन्तला मेरे पास आई और बापू की गोद में पहुच गई। उन्होने बुन्दे पकडकर हंसते हुए कहा, "अच्छा, हरिभाऊ की लडकी भी यह पहनती है!" मेरे काटो तो खून नही। अब यह कहता हू कि माताजी ने मुझसे छिपाकर ला दिये हैं तो अपने छुटकारे के लिए मा को उनके सामने नीचा दिखाता हू। मुझे लज्जित देख बापू शायद समझ गये। उससे पूछा, "क्यो, माजी ने ला दिये है न?" शकु ने मेरी ओर देखते हुए गर्दन हिलाकर 'हां' का भाव प्रकट किया।

बापू बोले, "अच्छा, अच्छा, अभी तुम्हें आश्रम में और रहना चाहिए।"

× × ×

एक बार अजमेर स्टेशन से ट्रेन में जाते हुए बापू मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। बड़ी सूक्ष्मता से मुझे समझा रहे थे। किसी एक मुद्दे का मैं विचार करने लगा। अब ध्यान तो उस मुद्दे में लग रहा था इधर बापू कहते जाते थे और मैं 'हां-हां' कहता जाता था। मेरी आंखों से बापू ने देख लिया कि मैं किसी और ही दुनिया में हूं। झट पूछ बैठे, "समझे ?" मेरे मुह से उसी समय हठात् निकल गया, "हां।" फिर हसकर पूछा, "क्या समझे ?" अब मुझे होश आया। जवाब क्या देता ? समझा तो कुछ खाक भी नही था। उनका मुह देखता हक्का-बक्का हो रहा। झेंपते हुए कहा, "बापू, मैं तो किसी और ही विचार में पड गया था। यो ही 'हां-हां' कहता रहा।"

बापू बोले, "सो तो मैंने देखा, तभी तो तुमसे पूछा। मैं बात करते समय सामने वाले की आखो व चेहरे को देखता रहता हू। जब यह मालूम होता है कि यह सुनी-अनसुनी करता है तो या तो बातचीत बन्द कर देता हू, या विषय बदल देता हू।"

× × ×

राहतजी ने एक आपबीती मुझे सुनाई थी। बापू आगरा आये थे। राहतजी उनसे मिलने गये। बापू ने दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का काम जब शुरू किया तब जो हिन्दी-प्रचारक वहां पहले-पहल पहुचे थे, उनमें भाई क्षेमानन्दजी राहत भी थे। वे हिन्दी के अच्छे लेखक, कवि व बडे विनोदशील थे। बापू से उनका तभी से सम्पर्क था। इन दिनो वे मेरे साथ 'त्यागभूमि' का सपादन कर रहे थे। 'त्यागभूमि' का 'प्रताप-अक' निकालना था। शायद उसी सिलसिले में मिलने गए थे। आगरे में बापू के डेरे पर ही ठहरे थे। बापू को कही जाना था। राहतजी भी साथ जाने वाले थे। बापू आगे चल पडे, राहतजी पीछे रह गये। वे गले में मालवीयजी की तरह दुपट्टा डालते थे। उसे खोजने व गले में डालने में देर हो गई। बापू रुक गये। आते ही पूछा, 'क्यो, पिछड़ क्यो गये ?"

"दुपट्टा डालने में रह गया।"

"दुपट्टे की क्या जरूरत है ? देखो, मेरे तो नही है।"
"दुपट्टे से शोभा बन जाती है।"
"हां, लेकिन कीमत कम हो जाती है।"

: २६ :

योग्य उत्तराधिकारी

१९२८ में एक बार बापू को गश आ गया। कुछ ऐसे संयोग आकर जुट गये थे कि उनके निकटवर्त्तियो को ऐसा लगने लगा था कि अब बापू ज्यादा दिन नही रहेगे।। मैं इत्तफाक से उस दिन वहीं था। मुझे जल्दी ही आश्रम से जाना था, परन्तु बापू की तबीयत देखकर जी हुआ कि पाच-सात दिन ठहरकर चलना ठीक रहेगा। श्रद्धेय जमनालालजी भी वही थे। बाद को हम दोनो को ऐसा लगा कि किसी भी बडे-से-बडे कारण से भी अपना निश्चित कार्य-क्रम बदलना बापू को अच्छा नही लगेगा, खासकर उनके खातिर। अब हम दुविधा में पड गये। एक ओर पूज्य बापू के आशंकित विछोह की हृदय-विदारक कल्पना, दूसरी ओर कर्त्तव्य का व बापू की रुचि का आह्वान। अन्त मे भगवान् ने या बापू के पुण्य ने हमें बल दिया। हमने सोचा कि ऐसी कमजोरी रखने से तो बापू का बोझ बढेगा। हमे बापू का मोह छोड-कर उनके कार्य का ही ध्यान रखना चाहिए। हम अपना निश्चय सुनाने व विदा लेने बापू के पास गये।

वे खटिया पर पडे हुए थे। डाक्टरो ने उन्हे पूर्ण आराम की हिदायत दी थी। श्री शकरलालभाई बैकर डाक्टरो से जोड-तोड मिडाकर बापू को ज्यादा आराम देने व दूध आदि अधिक पिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। शकरलालभाई व जमनालालजी के मिजाज में यही अन्तर था कि शकरलालभाई को बापू का मोह अधिक था, जबकि, जमनालालजी उनके काम का, उनका बोझ हल्का करने का

ध्यान अधिक रखने थे। हमने बापू से कहा, "आपकी तबीयत देखकर हम अपना कार्य-क्रम बदल रहे थे। पीछे सोचा कि एक दिन तो ऐसा आने ही वाला है, जब कि आपका वियोग हमको सहना है। हमे उसकी तैयारी कर रखनी चाहिए। ऐसा न करके यदि हम आपके पास रहेगे तो हमें तो बहुत ही बेफिक्री हो जायगी, परन्तु इससे आपको दुख ही होगा। आपको यह पसन्द नही कि आपके खातिर आपका काम बिगडे। अतः हमने जाने का ही निश्चय किया है और यदि आपको ज्यादा दिन जीने देना है तो आपके काम का बोझ जितना हल्का किया जा सके, करना हमारा धर्म होगा।"

बापू बहुत प्रसन्न हुए। मुह मटकाकर कहने लगे "हा, तुम ठीक कहते हो। मुझे ऐसा नही लगता कि मुझे कुछ होने वाला है। परन्तु देह का क्या ? काम का ही विचार सदैव अच्छा होता है। तुम लोग निश्चित होकर जाओ।"

"हम लोगो ने यह भी निश्चय किया है कि अब से मामूली सलाह-मशविरे के अलावा आपको कष्ट नही देंगे। आपका सिद्धात भरसक समझ लिया है। असली बात तो उसका अमल करना है। इसके लिए तो दूर रहकर भी आपका आशीर्वाद मिलता रहेगा और वह हमें बल देता रहेगा।"

बापू "हा, ठीक है। ऐसा ही सोचना चाहिए।" हमने प्रणाम करके विदा ली, मगर मन पर कुछ बोझ रहा ही। यही सप्ताह बापू के लिए कठिन कहा जाता था। उसके निकल जाने पर हमने सतोष की सास ली व भगवान् को अनेक धन्यवाद दिये।

: ३० :

बापू के पुण्य प्रभाव से

बापू ने जेल में २१ दिन तक का उपवास किया था। मुझे जहा तक याद है, दूसरी गोलमेज परिषद् के बाद जो दमन का दौर चला, उस सिल-

सिले की यह घटना है। शायद हरिजनो के संबध में था। उन दिनो बापू पहले से ही कमजोर हो रहे थे। एकाएक यह समाचार सुनकर सब के होश फाकता हो गए। लेकिन मेरे दिल ने कहा बापू का कुछ भी नही बिगड सकता। लोकमान्य तिलक जब बीमार हुए तो न जाने क्यो मुझे ऐसा लगा था कि अब ये नही बचेंगे। और ऐसा ही हुआ। इस बार अन्तरात्मा ने कहा कि बापू इस उपवास से जीते-जागते निकल जायेंगे। उन दिनो मैं शान्ताक्रूज, बम्बई में इलाज करा रहा था। वहा के गाधी-भक्तो ने बापू के दीर्घजीवन के लिए एक प्रार्थना-सभा का आयोजना की। उसमे मेरा भाषण रखा गया था। ऐसे अवसर पर क्या बोलूं, कुछ समझ मे नही आता था। लोग बहुत अधीर और बदहवास-से हो रहे थे। बापू के प्रति लोगो का जो सहज भक्ति-भाव था, उसे देखते हुए यह स्वाभाविक ही था, परन्तु मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि क्या इस तरह हम बापू को सतोष पहुचायेंगे ? अपने को उनके सच्चे भक्त, शिष्य या उत्तराधिकारी साबित करेंगे ? इस प्रश्न ने मेरे दिमाग का दरवाजा खोल दिया। मैंने कहा "मुझे तो तनिक भी डर नही कि बापू को इस उपवास से कोई आच आवेगी। यद्यपि बापू का शरीर कमजोर हो गया है, फिर भी उसमे इतनी सात्विक शक्ति सचित है कि उनका बाल भी बांका नही हो सकता। दूसरे भोगी लोग अधिक खाते और अधिक गवाते है, योगी थोडा खाते और अधिक सचित करते है। बापू अपनी इद्रियो द्वारा जितनी शक्ति ग्रहण करते हैं, उससे बहुत कम खर्च करते है। अत उनकी पूंजी बहुत है। साधारण भोगी जहा एक ही उपवास में ढीला-ढाला हो जाता है, वहा बापू जैसे योगी कई उपवासो को सहन करके भी शक्ति नही गवाते, बल्कि उल्टा अधिक प्राप्त करते है। अतः हमें उनके विषय में चिन्तित होकर हतबुद्धि होने की आवश्यकता नही है।"

एक और बात। यदि बापू को जिलाना ही है तो हम रो-धोकर उन्हे नही जिला सकते। यदि वे सुनेंगे कि मेरे पीछे लोग रो-धोकर ही बैठ

जाने वाले हैं तो वे जल्दी मरना पसन्द करेंगे । ऐसे निकम्मे उत्तराधिकारियो को पीछे छोड जाने मे बापू की जिन्दगी का लुत्फ नही मिल सकता । परन्तु यदि हम उन्हे यह सदेश भेजे कि बापू, हमें तो यह आशका जरा भी नही है कि आपको इस उपवास में कुछ हो जायगा, परन्तु यदि हो ही जाय तो आप विश्वास रखिए कि हम आपके अधूरे काम को पूरा करने में कोई कसर बाकी न रखेंगे, आप बहुत शाति व निश्चिन्तता के साथ देह छोड़ें, तो मै समझता हू, बापू जानेवाले भी अवश्य रुक जायगे । हमे उनके सामने निकम्मा नही साबित होना है । लोगो के हृदय में यह बात बैठ गई । बाद को बापू इस अग्नि परीक्षा से सही-सलामत निकल आए और उपवास सफल भी हुआ—पूना पैक्ट के रूप मे मुझे ऐसा लगता है कि बापू के पुण्य-प्रभाव से ही मुझे ये विचार सूझे थे ।

: ३१ :

पिता, गुरु और नेता

बिजोलिया (मेवाड) के उदयपुर राज्य का समझौता कराके मै सत्याग्रह में (१९३०में) जेल चला गया । बाद में मालूम हुआ कि उसकी एक शर्त का पालन राज्य की ओर से नही हो रहा है । इस समाचार से मुझे जेल में बडी बेचैनी हुई । यदि उस शर्त का पालन न हुआ तो किसानो के साथ बडा धोखा होगा और इसमें मेरी जिम्मेदारी कम नही है । जेल से न जाने कब छुटकारा होगा और जेल में बैठे अब उपाय भी क्या किया जा सकता है । ऐसी उधेड-बुन मे मेरा मन बडा अशात रहने लगा । एक दिन मैं अपने मन को प्रार्थनामय कर रहा था कि मुझे एकाएक सूझा यदि कुछ न बन पडा तो अन्त में मैं प्राणो की बाजी लगा दूगा । जब कोई पक्ष समझौते को भग करता है तो दूसरे पक्ष को उपवास करने का अधिकार हो जाता है । मै आमरण

उपवास करूगा। इस विचार से मुझे बडी शांति मिली। जब किसी बात के लिए अन्तिम अस्त्र छोडने की ज्यादा-से-ज्यादा कुरबानी करने की तैयारी कर लेते हैं तब हममे हजार हाथी का बल आ जाता है। मुझे ऐसा लगने लगा मानो मैंने राजवालो से शर्त मनवा ही ली है।

जेल से छूटने पर मैंने जमनालालजी से अपना विचार कहा तो वे चिन्तित हो गए। वे मेरे स्वभाव को जानते थे कि मै जो ठान लेता हू, वह करके छोडता हू। उन्होंने सोचा कि बापू के पास ले जाकर मुझे मनवा देंगे। मुझसे कहा "ऐसा करो, हम बापू से इस विषय में चर्चा कर लें। वे जैसी सलाह दें, वैसा करना ठीक रहेगा।" उन्होंने बापू से कहा, "हरिभाऊ बिजोलिया के मामले मे आमरण अनशन की सोच रहा ह, बहुत सेंसिटिव (भावुक) हैं, इसलिए आपके पास लाया हू। कही कुछ-का-कुछ कर न बैठे।"

"ऐसी सेसिटिवनेस तो मुझे पसन्द है। जबतक मनुष्य मे यह रहती है तबतक उसे जीवित व प्रगतिशील समझो। अपने कर्तव्य का, जिम्मेदारी का, जिसे भान नही, वह मनुष्य ही क्या? हरिभाऊ को इसका भान है, यह अच्छी बात है, परन्तु मेरी समझ में इसे जल्दी करने की जरूरत नही है। यह जानता है कि उपवास तो अन्तिम उपाय है। पहले और कई कार्रवाइया की जा सकती हैं।" फिर उन्होंने मुझे वहा रचनात्मक काम और सगठन करने की सलाह दी, लोगो मे फिर बल आ जाय और उसके द्वारा समझौते की शर्तें मनवाना आसान हो जाय। अन्त में एक दूसरा सत्याग्रह ही वहा करना पड़ा।

बापू ने जितनी कद्र करने योग्य बात थी, उसकी कद्र की, जितनी अनावश्यक या अप्रासगिक थी, उसके लिए मुझे समझाया व अन्त मे रास्ता भी बताया। इसीसे वे पिता, गुरु, नेता, तीनो पदो को विभूषित कर सके थे।

मुझे संस्थाओं के बडे व सूक्ष्म विधि-विधान नियम कार्य-साधक के बजाय कार्य-बाधक अधिक मालूम होते है। मेरे विधानवादी मित्रो से

अक्सर मेरा झगड़ा हो जाया करता था । एक बार वर्धा में मैंने बापू से पूछा, "बापू, संस्थाओं के ये विधि-विधान तो मुझे मनुष्य को जकड़ते हुए-से मालूम होते हैं । मेरा अबतक का अनुभव तो यह है कि काम करनेवाले के मार्ग में तो ये बाधक होते हैं और जिन्हें काम नहीं करना है, बिगाड़ना है या बखेड़ा पैदा करना है, उनके लिए बड़े अच्छे साबित होते हैं। ये हमारे पांव की बेड़ियां हैं और उनके हाथ में कुल्हाड़ी हो जाते हैं । इनके कारण काम में देर भी बहुत लगती है और अपनी योजना, प्रस्ताव, कार्यक्रम पास कराने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, परन्तु यदि किसीको काम अड़ाना है तो वह फौरन किसी-न-किसी नियम या धारा का सहारा लेकर उसे रोक देता है। आप बैठे रहिए अपना-सा मुंह लेकर ।"

बापू ने कहा "तुम्हारा कहना ठीक है । जैसे-जैसे व्यक्ति या संस्था का विकास हो, वैसे-वैसे नियमों की पकड़—सख्ती—भी ढीली होनी चाहिए । उनकी व्यापकता बढ़नी चाहिए । नियमों का पालन बाहरी दबाव से नहीं, भीतरी उत्साह से होना चाहिए । कहीं नियम मानना व कहीं तोड़ना, यह विवेक ही सत्याग्रह की कुंजी है, नियम-विधान को आमतौर पर मानने व पालने की वृत्ति से इसका विकास होता है। फिर एक समय ऐसा आ जाता है, जब मनुष्य का स्वभाव ही नियम-विधान-पालन का बन जाता है, तब नियम-विधान उसे बाधक नहीं मालूम होते ।"

: ३२ :

सरदार की विशेषता

जयपुर-सत्याग्रह शुरू करने के पहले श्री जमनालालजी ने, जो इसके नेता थे, भाई हीरालालजी शास्त्री आदि जयपुर राज्य प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के सदस्यों से कहा था कि यदि कार्यकारिणी के पांच-छ

सदस्य भी जेल जाने को तैयार हो तो मैं पूज्य बापू के आशीर्वाद लेने का प्रयत्न करूंगा। उनकी शर्तें जो कुछ हो, परन्तु मेरी यह कम-से-कम शर्त है और मैं आशा रखता हू कि बापूजी का आशीर्वाद मिल जायगा। यह शर्त मानकर श्री शास्त्रीजी, स्व० पाटणीजी, श्री हरलाल-सिंहजी आदि बारडोली गये। उन दिनो बापू का पडाव बारडोली में था। मैं भी साथ था। वहा श्रद्धेय जमनालालजी ने उसी ऐतिहासिक बड के पेड के नीचे, जिसके नीचे बापूजी ने पहले महान सभायें की थी, फिर अपनी शर्त को दुहराया और इन मित्रो ने अपनी प्रतिज्ञा दृढ की। बापूजी ने आशीर्वाद दिये और कहा कि इसके संगठन व तफसील का काम जमनालालजी करेंगे; परन्तु यहा सरदार (पटेल) भी मौजूद है। उन्हे बारडोली-सत्याग्रह का खूब अनुभव है, अतः उनकी भी सलाह ले लो।

बापूजी ऊपर के कमरे मे थे, उसके ठीक नीचे सरदार का कमरा था। वे एक चटाई पर बैठे हुए थे। मैंने या शास्त्रीजी ने उनके सामने प्रश्न रक्खा हम लोग जयपुर में सत्याग्रह करना चाहते हैं। बापू की सलाह लेने आये थे, अब आपसे भी सलाह लेना चाहते हैं।

सरदार ने अपनी निराली अक्खडता से कहा, "सत्याग्रह करना चाहते हो या सत्याग्रह नही करना चाहते हो ?"

"सत्याग्रह नही करना होता तो बापू के पास आने की जरूरत ही नही थी ?"

"नही, यदि सत्याग्रह करना है तो बापू के पास आने की क्या जरूरत थी ? न करना हो तो उनके मत्थे टालकर बरी हो सकते हैं कि हम तो सत्याग्रह करना चाहते थे, बापू ने मना कर दिया !"

हम एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। फिर सरदार बोले, "मैं तो जब कभी कोई काम शुरू करता हू तो बापू से नही पूछता। कही शंका हो तो पूछना ठीक है। अतः यदि सत्याग्रह करना ही है तो अपने-आप से पूछकर निश्चय करो। न बापू की सलाह लो, न मेरी। सत्याग्रह तो आप लोगो को करना है, न कि हमें।"

सरदार की सीधी साफ बात का बड़ा असर हम लोगों पर हुआ। एक नया प्रकाश-सा मिला।

हमने कहा, "निश्चय तो हमने कर लिया है, जमनालालजी के नेतृत्व में सत्याग्रह होगा। बापू के सिर्फ आशीर्वाद चाहते थे। आपको बारडोली के सत्याग्रह का विस्तृत अनुभव है। अत: आपसे उसका लाभ उठाना चाहते हैं। बापूजी ने ही आपके पास भेजा है।"

"हां, तो ठीक।" कहकर बहुतेरी सूचनाएं उन्होंने दीं। उस समय की सरदार की मुख-मुद्रा और उनके दो-चार वाक्य आज भी मेरे सामने मूर्त्तिमान् हो जाते हैं—"सत्याग्रह करना है तो बापू से क्या पूछना ?" इस एक ही वाक्य में सरदार के चरित्र की सारी विशेषता आ जाती है।

: ३३ :

बापू की सिखावन

बापू राजकोट का सत्याग्रह स्थगित करा चुके थे। उन दिनों कई देशी रियासतों में सत्याग्रह की धूम मच रही थी। जयपुर में तो चल ही रहा था। उसके नेता श्री जमनालालजी तथा कार्यकारिणी के सदस्य जेल में पहुंच चुके थे। कई सौ स्वयंसेवक गिरफ्तार हो चुके थे। सत्याग्रह का दृश्य जयपुर में ऐसा दीखता था, मानो कोई रामलीला हो रही हो। बापू राजकोट से दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में हमें उनसे मिलकर जयपुर सत्याग्रह का हाल बताना था। देशपांडेजी व मैं उनसे मिलने शायद मोजत स्टेशन (मारवाड) गये थे। जबसे हमने सुना कि राजकोट का सत्याग्रह बापू ने इसलिए बन्द करा दिया है कि सत्याग्रह के नियमों का पालन उसमें ठीक ठीक नहीं हो रहा है, तबसे हमको भी चिन्ता हो गई थी, क्योंकि जयपुर सत्याग्रह में भी ऐसा हो रहा था। जेल से व जेल कैंपो से ऐसी ऐसी खबरें आ रही थीं कि मुझे डर

हुआ कि बापू जयपुर का भी सत्याग्रह स्थगित करा देंगे। पहले तो विभिन्न जेल कैंपो में जाकर तथा जयपुर मे कार्यकर्त्ताओ से मिलकर उन सब बातो को ठीक करने का प्रयत्न किया, जो सत्याग्रह की दृष्टि से गलत हो रही थी, फिर बापू को हमने सब हाल सुनाया। तब उन्होने वही प्रश्न किया, जिसकी हमको आशंका थी "तुम्हारा सत्याग्रह तो ठीक-ठाक चल रहा है न ? कोई गडबड तो नही है ?"

हमारा चेहरा सूखने लगा। मैंने कहा, "बापूजी, कह तो नही सकते कि सब ठीक ठाक चल रहा है, गलतिया तो हो ही रही है, परन्तु हम लोग पूरी-पूरी कोशिश कर रहे है कि गलतिया रुकें व आगे न होने पावें। आपके आदर्श का खयाल तो बहुत रखते है, परन्तु मजे व सधे हुए कार्यकर्ता थोडे है। नये-नये ज्यादा है। जो ज्यादा जिम्मेदार थे, वे सब जेलो में बन्द है। फिर भी हम आपको दुख का कारण नही पैदा होने देंगे।" मैंने यह सब कहा तो, पर भीतर-ही-भीतर मेरा दिल बैठा जा रहा था।

बापू गम्भीर हो गये- "हा, सो तो मै जानता था। अच्छा, दिल्ली चलकर और बातें करेंगे।" फिर राजकोट के सत्याग्रह की एक-एक त्रुटि बताने लगे, ताकि हम अपनी जिम्मेदारी और अच्छी तरह से समझ लें।

अन्त मे दिल्ली जाकर उन्होने यह सलाह दी कि सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय। मुझे कुछ ऐसा याद पडता है कि बाद मे उन्होने बहुत सीमित रूप मे चुने हुए लोगो द्वारा सत्याग्रह करने की छूट दे दी थी। जो हो, उस समय उनका सभाषण यहा देने योग्य है।

हम "बापूजी, एकदम स्थगित कर देने से तो लोग हतोत्साह हो जायगे, साथ ही यह भ्रम भी फैल जायगा कि सत्याग्रह में अशुद्धि होने से बापूजी ने बन्द कर दिया।"

बापू "लेकिन मैं चाहता हू कि तुम लोग मुझे एक मौका दो—और इसलिए मै कहता हूं कि सत्याग्रह स्थगित कर दो।"

अब तो हम लाजवाब हो गये, लेकिन बापू देख रहे थे कि हम लोग खिन्न व निरुत्साह हो रहे है। बोले, "देखो, मैं मानता हूं कि जयपुर का

मसला हल करने के लिए तो अकेले जमनालालजी ही जेल में पड़े रहें तो काफी है। उनकी कुरबानी को भी यह सरकार पचा नही सकेगी। और मैं एक बात कहता हू उसे तुम लोग अपने ही तक रखना। लार्ड लिनलिथगो मुझसे पहले ही कह चुके हैं कि जयपुर का मामला मैं निपटा दूंगा।"

"लेकिन ये लोग जब हमारा आन्दोलन तेजी पर होता है तब आश्वासन देते हैं, पीछे टाल-टूल करते हैं।"

"हा, ऐसा भी होता है, परन्तु लार्ड लिनलिथगो को मुझे कुछ समय देना चाहिए। और इसलिए मैं तुम लोगो से समय मागता हू। लार्ड लिनलिथगो चाहे भी तो एकाएक उसे—तत्कालीन जयपुर का एडमिनिस्ट्रेटर जो अंग्रेज था—हटा नही सकते। उसके लिए उन्हें जमीन तैयार करनी पड़ती है, जिसमे काफी समय लग जाता है। नीचे के अफसरो को राजी करना पडता है। देखो, मुझको तो तुम लोग इतना मानते हो, फिर भी जो बात मैं चाहता हू, तुम लोगो से आसानी से व झट-पट थोड़े ही करा पाता हू। कई बातें तो मुझे छोड भी देनी पडती हैं। मेरे पास तो कोई ऐसा कडा तन्त्र नही है, फिर भी इतनी दिक्कत पेश आती है। वाइसराय तो कठोर तन्त्र से बधा हुआ है। अतः उसे मुझसे भी अधिक समय चाहिए।"

अब जब कभी दूसरो से कोई काम लेने या करवाने के अवसर आते हैं तो बापू के ये वचन बहुत धीरज बधा देते हैं और प्रकाश-पथ का काम देते है।

: ३४ :

सही सलाह

महाराष्ट्र के कुछ अखबार जमनालालजी पर ऐसे इल्जाम लगाते थे कि ये कांग्रेस के खजान्चीपन का दुरुपयोग करते हैं रुपये-पैसे मे

गडबड करते है। जमनालालजी ठहरे व्यापारी आदमी। एक व्यापारी व्यवसायी के लिए प्रत्यक्ष धन की अपेक्षा साख की कीमत ज्यादा होती है। जमनालालजी को लगा कि ऐसे हमलो का यदि मै प्रतिकार न करूं, चुपचाप बर्दाश्त करता रहू तो लोग, खासकर व्यापारी, यही समझेगे कि कुछ दाल में काला है। उनके मन मे उथल-पुथल मच रही थी कि क्या उपाय करें। ले-देकर 'मानहानि' का मुकदमा उन पत्रो के सम्पादकों पर चलाने की बात उनके मन में आया करती थी। वे यह भी सोचते थे कि मानहानि की नालिश करने से अपने आप हमारे बहीखाते अदालत मे पेश होगे, सामनेवाली पार्टी को उनकी जाच व छानबीन का अच्छा अवसर मिलेगा जिससे लोगो का भ्रम अपने आप दूर हो जायगा। इत्तफाक से उन दिनो श्री घनश्यामदासजी बिडला भी वर्धा ही थे। तब महात्माजी सेवाग्राम रहने नही गये थे। जमनालालजी ने घनश्यामदासजी से राय मागी। मै भी मौजूद था। हम दोनो ने कहा कि मानहानि के मुकदमे के चक्कर में पडना फिजूल है। इस विषय मे मैने स्व० गणेशजी शहीद गणेशशकरजी विद्यार्थी की एक नसीहत सुनाई जो मुझे उन्होने कानपुर मे एक अवसर पर दी थी। १९२० में मै गणेशजी का 'पर्सनल असिस्टेन्ट' रहा था। 'प्रताप' का देशी-राज्य विभाग मेरे जिम्मे था। इन्दौर के एक बदनाम पुलिस अफसर के बारे में मैने ऐसी टिप्पणी लिख दी जो 'मानहानि' मे आ सकती थी। इदौर से उनके वकील ने गणेशजी को नोटिस भेजा। गणेशजी चिन्ता मे पड गये। मुझसे कहा, "भाऊजी, राजद्रोह का मुकदमा अच्छा, मानहानि का मुकदमा तो पिछले जन्म के पाप का उदय ही समझो। 'प्रताप' पर कई मानहानि के मुकदमे चले है। हमने डटकर उनका सामना किया है, पर मै जानता हू कि कितनी मुसीबत व बरबादी उठानी पडी है। राजद्रोह से तो हम तुरन्त शहीद बन जाते है और चारो ओर से प्रशसा, मान और धन की वर्षा होने लगती है। परन्तु 'मानहानि' को लोग व्यक्तिगत मामला समझकर छोड देते हैं और कोई भाव नही पूछता। राजद्रोह में वकील भी कई बार मुफ्त मिल जाते ह, पर मान-

हानि में सब रुपये मागते हैं। अतः आयन्दा 'मानहानि' की जोखिम हरगिज मत उठाना। इस मामले को तो मैं निपटा लूंगा।"

मैंने यही किस्सा जमनालालजी को सुनाया, पर उन्हे कुछ जचा नही। आखिर तय हुआ कि चलो, बापू से पूछें। तीनो बापू के कमरे मे पहुचे। जमनालालजी की बात सुनकर बापू ने पूछा "तुम्हारे वर्किंग कमेटी के सदस्य क्या सोचते हैं? उनका तुमपर विश्वास है या नही?"

"उनका तो यह हाल है कि मैं हर साल खजान्ची पद से इस्तीफा देता हू, कहता हू किसी दूसरे को बना लो, पर वे हर बार मुझीको चुनते हैं। मैं इसलिए भी इस्तीफा देता हू कि आपने मुझे इसके लिए बहुत बांध रखा है। मुझसे अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी का खत लिखवाया है, यह मेरे लिए बडी जोखिम है। मैं इससे भी छूटना चाहता हूं, परन्तु वे लोग नही मानते।"

"हा, तो फिर क्या चाहिए। जबतक आपके साथियो का विश्वास आप पर है, तबतक आपको कुछ भी करने की जरूरत नही है मानहानि का मुकदमा चलाना तो ठीक नही है। इससे कुछ फायदा नही होगा। मैंने जो तुमको खत लिखकर बांधा है सो तो मैं अपने नजदीक के लोगो के साथ ज्यादा कडाई ही बरतता हू, सो तुम जानते हो। इसीमें उनकी व सार्वजनिक जिम्मेदारियो व संस्थाओं की रक्षा होती है। जहातक तुम्हारे बहीखाते व हिसाब-किताब की शुद्धता से सबंध है, तुम उन्हें बम्बई के अपने दफ्तर में एक नियत समय पर आम लोगो के देखने के लिए खुले रख सकते हो।"

परन्तु जमनालालजी ने आखिर 'मानहानि' का मुकदमा चलाना ही ठीक समझा। और अंत में अखबारवालो को सजाए हुईं। बहीखाते अदालत में मगाये गये और वे शुद्ध पाये गये। यह लाभ तो हुआ, फिर भी इससे जमनालालजी को असमाधान ही रहा और उसे उन्होंने मुझपर प्रकट भी किया। वे खरे आदमी थे, कहने लगे "आपलोगो का कहना ही ठीक था। इस मुकदमे में कोई लाभ नही हुआ। जो सजा इन्हे मिली

उससे कहीं ज्यादा प्रचार इस मामले का हुआ। सजा को लोग यह कह कर उड़ा देंगे कि जमनालालजी जैसे प्रभावशाली व्यक्ति के मुकाबले में वर्धा में कौन जीत सकता था; किन्तु इल्जामों का प्रचार न जाने कहां-कहां के अखबारों में हुआ होगा।"

: ३५ :

मीठा विनोद

बापूजी का जीवन प्रयोगमय था। यह तो सभी जानते हैं, उनका विनोद व मीठा व्यंग भी मजेदार हुआ करता था। एक बार कच्चे अनाज खाने का प्रयोग हुआ। साबरमती में मदरास के एक अन्नशास्त्री आये। वे अनाज को विधिवत भिगोकर खाने के लिए देते थे। आश्रम के कई लोग इस प्रयोग में शरीक हुए। बाद में वह छोड़ दिया गया। एक रोज शाम को बापू अपनी कुटिया के आंगन में, खुले में, खटिया पर लेटे हुए थे। बा सिर में तेल मल रही थीं। सामने वे मदरासी महाशय खड़े थे। हम कुछ लोग आसपास जमा हो गये थे। मदरासी सज्जन ने कहा "बापू, दूध तो मनुष्य की खुराक नहीं है। मां का दूध ही मनुष्य की स्वाभाविक खुराक है। आप जो बकरी का दूध पीते हैं, यह भी ठीक नहीं है। पशु का दूध पीने से पशु के गुण आ जाते हैं।"

बापू के सोने का वक्त नजदीक आ रहा था। बापू खिलखिलाकर हंस पड़े और सोने के लिए अपनी टांग लम्बी करते और चादर ओढ़ते हुए बोले "हां, आप ठीक कहते हैं। देखो बकरी का दूध पीने से मेरे सींग उगने लगे हैं। अब तुम लोग भागो, नहीं तो सींग मार दूंगा।"

हम सब लोग मारे हंसी के उछल पड़े। मदरासीभाई भी इस व्यंग का रसास्वादन करते हुए रवाना हो गये।

: ३६ :

बापू की महानता

१९३४–३५ मे बापू हरिजन-यात्रा के लिए निकले थे। अजमेर व ब्यावर भी गए थे। मै साथ था ही। ब्यावर थोडी ही देर ठहरे थे। स्नान व भोजन का प्रबन्ध वही रखा गया था। चलतू प्रबन्ध किया गया था और दूसरे साथी भी शायद पीछे छूट गए थे या आगे चले गए थे। अत. बापू के व्यक्तिगत कार्य का ध्यान वहा मैं रखता था। मुझे वैसे वापूजी की व्यक्तिगत सेवा के अवसर मिले ही नही। मुझे उनके शारीरिक सेवा की अपेक्षा उनके कार्यों की फिकर ज्यादा रहती थी, फिर उनकी कडाई से भी डरता था। किन्तु यहा तो उन्हे सभालना ही था। मैं वडी तत्परता से और बारीकी से सब बातो का ध्यान रखता था। बापू नहाने के लिए अपना कच्छा व तौलिया लेकर कमरे में गए। मै बाहर खडा रहा इस फिराक मे कि बाहर निकलें तो मै कपडे धो डालू। बापू को बडी देर लगी। मुझे अचरज हुआ कि क्या बापू नहाने में इतना वक्त लगाते है। आशकाए होने लगी, मन भीतर से बेचैन होने लगा, पर आवाज लगाने की हिम्मत नही होती थी। इस उधेड-बुन में परेशान था ही कि कमरे का दरवाजा खुला। बापू हाथ में धुले हुए कपडे लेकर बाहर निकले। मैं देखकर अवाक् रह गया। कुछ झल्लाये स्वर में बापू से कहा "यह आपने क्या किया ? मैं तो इसीलिए जबसे यहा खडा हू कि आप बाहर निकलें तो कपडे धो डालू। आपको बडी देर लगी तो मै चिन्ता में भी पड गया था।"

"धोलिये तो क्या हुआ, आज समय था तो सोचा चलो, कपडे भी धोता चलू ।"

× × ×

इसी यात्रा के दिनों में अजमेर के एक मित्र के द्वारा स्वर्गीय अर्जुनलालजी सेठी ने बापू से कहलवाया, या शायद उन मित्र ने ही अपनी तरफ से प्रस्ताव रखा, कि बापू सेठीजी के घर मिलने जावें। सेठीजी अपने ढंग के स्वतन्त्र व्यक्ति थे। बापू के प्रति श्रद्धा भी थी। और उनसे लड़ भी पडते थे। कानपुर काग्रेस मे उन्होने बापूजी को बहुत खरी-खोटी सुनाई थी और बापू शात चित्त से सब सुनते रहे। उन दिनो सेठीजी काग्रेस सगठन से भी दूर पड गये थे। उन मित्र को लगा कि यदि बापू उनके यहा चले जांय तो सेठीजी के दिल का सारा मलाल धुल जाय, बापू के प्रति फिर श्रद्धा-भक्ति का प्रवाह उनके मन मे उमड पडे व उनकी शक्ति फिर काग्रेस व बापू के कामो मे लगने लगे। बापू ने मुझसे पूछा "क्यो, तुम्हारी क्या राय है ?"

"हा, बापू जाने मे तो कोई हर्ज नही है; परन्तु मुझे यह विश्वास नही होता कि इससे सेठीजी की वृत्ति में कोई खास फर्क पड जायगा। आप जाना चाहे तो अवश्य जाय ।"

"तो तुम साथ चलोगे न ?" उन दिनो सेठीजी मुझसे खास तौर पर नाराज थे। इसलिए बापू ने पूछा ।

"क्यो नही ? सेठीजी को मै अपना बुजुर्ग मानता हू, हालाकि वे मुझसे नाराज है । आपको शायद मालूम नही है कि सेठीजी जब वेलोर जेल से छूटकर इदौर आये थे तो मै उन लोगो में से था, जो उनकी जय के नारे लगाते थे और एक देवता की तरह भक्ति-भाव से उनके चरणो पर अपना मस्तक रखकर अपने को कृतार्थ मानते थे। आज मुझे दुख है कि वह स्थिति इतनी बदल गई ।"

"तो जाना ही ठीक है, तुम जैसा कहते हो वैसा ही नतीजा निकले तो भी हमें शुभ कार्य करते हुए हिचकिचाना न चाहिए। तात्कालिक परिणाम अच्छा या मनोवाञ्छित न निकले तो भी शुभ

कार्य व शुभ भाव का जो परिणाम निकलेगा वह अच्छा ही होगा। बुरा हरगिज नही हो सकता। अतः जाने मे अच्छे परिणाम की आशा तो रखनी ही चाहिए।"

सेठीजी तो बापूजी को अपने घर मे पाकर गद्गद् हो गये। हमलोग भी आनन्द-विभोर हो उठे। वह पुण्य स्मृति आज भी मुझे गद्गद् कर देती है। बापू की अहिंसा की थाह कौन ले सकता था? इसीसे वे लगभग अजातशत्रु बन गये थे।

: ३७ :

लेने के देने

इसी अजमेर—यात्रा का एक चिरस्मरणीय संस्मरण और याद आ रहा है। बापू के एक पुराने मेजबा ने उन्हें अपने यहा शाम को भोजन करने का निमत्रण दिया। कुछ नौजवान उनसे नाराज थे। बापू की इस यात्रा में जो स्वयसेवको का जत्था तैयार किया था, उसके मुखिया व कुछ स्वयसेवको ने ठान लिया था कि वे बापू को उनके यहा न जाने देंगे। पू० ठक्करबापा बापू के साथ यात्रा में थे और उसी मकान मे ठहरे थे जिसमें बापू का डेरा था। मै भी वही था। स्वयसेवको के प्रतिनिधियो ने हमसे कहा कि हम तो बापू को वहा नही जाने देंगे। बापू की मोटर के सामने लेट जायगे। हम चिन्तित हो उठे। आखिर यह समझौता हुआ कि स्वयसेवको का एक डेपुटेशन सुबह बापूजी से मिले। उन्हे उन भाई के बारे में जो कुछ शिकायतें हो बापू से कह दे। उन्हे सुन लेने पर बापू यदि जाना उचित समझें तो भले ही जाय। वे समझते थे कि बापू अधेरे मे न रहे। हमने निश्चिन्तता की सास ली।

रात के कोई ११—३ बजे होगे। इस समय मेरी नीद अक्सर खुल जाया करती है। उस दिन भी खुली तो बापू के कमरे में तेज बत्ती की

रोशनी दिखाई दी। मैंने सहज उत्सुकता से दरवाजे मे झाका तो बापू बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। मै दग रह गया। इधर मेरे मुह से निकल गया, "बापू, यह क्या ?" उधर उन्होने पूछा—"क्या तुम भी जाग रहे थे ? कुछ कहना तो नही है ?"

मझे यो कुछ भी नही कहना था। पर बापू के पूछते ही मुझे स्वयं-सेवको के डेपुटेशन वाली बात याद आ गई। मेरे मन में एक बिजली-सी चमकी कि मै ही क्यो न बापू के सामने वे सब शिकायतें रख दू। वे स्वयसेवक अपने रोष में बढा-चढा कर बापू से कहेगे। मै उसी काम को ज्यादा अच्छी तरह से निबाह दूगा। अत मैंने आगा-पीछा न सोचकर बापू से कह दिया "हा" कुछ बात कहनी है।" बापू ने कलम रख दी और कहा "कहो, क्या कहना है ?"

स्वयसेवको ने उन भाई के खिलाफ जो कुछ हमसे कहा था, मैंने सक्षेप में बापू के सामने रख दिया। बापू गम्भीर हो गए। बोले "तुम कुछ जानते हो ?"

"हा बापू, सुनी तो मैंने भी ऐसी ही बातें है।"

"तो मै कल तुम्हारा मुकाबला उनसे कराऊगा।"

मुझे तो कुछ सूझ नही पडा। कह दिया "अच्छी बात है।" अब मैं मन में सिटपिटाया कि अच्छे लेने के देने पडे। 'धर्म करते कर्म फूटे' वाली बात हो गई। वे मित्र आये और बापू ने मुझे बुलाया। उनसे कहा कि हरिभाऊ ने मुझसे आपके सबध मे ये-ये बातें कही है। आपका क्या कहना है ?

उन्होने उन बातो से तो इन्कार कर दिया और मुझपर नाराज हुए। बोले "आपको मुझपर शक था तो आपने मुझसे क्यो नही पूछा ? बिना मुझसे बातचीत किये आपका बापू से यह सब कहना कहा तक ठीक था ? सत्याग्रही का यही धर्म है ?"

मैं लज्जित हो गया। मैने कहा "आपकी बात बिलकुल ठीक है। मुझे आपसे ही बात करनी थी, परन्तु मैंने तो बापू से अपनी तरफ से कोई शिकायत नही की। दूसरे लोगो ने चिन्ताजनक अवस्था व

समस्या खड़ी कर दी थी। उसके निवारण के लिए मैंने बापू से यह सब कहा। इसमें मेरा उद्देश्य आपके प्रति बुरा नही था। बल्कि एक भयकर रूप से उपस्थित होनेवाली कुपरिस्थिति को बचाना था। फिर भी इस दोष के लिए क्षमा मागता हू।"

तब बापू ने उनसे कहा "अच्छा, तो इस सम्बन्ध मे पहले आप व हरिभाऊ बात-चीत कर लें, फिर मुझसे मिलें।"

हमने अपनी बातचीत की जो रिपोर्ट बापू को सुनाई, उसपर बापू ने उन मित्र के खिलाफ फैसला नही दिया। उन्होंने मुझसे कहा, "जबतक ये शिकायतें सच साबित नही हो जाती तबतक मुझे इन्हें निर्दोष ही मानना होगा। और जबतक मैं इन्हें निर्दोष मानता हू तबतक इनके यहा जाना मेरा कर्त्तव्य है। मैं ऐसा न करू तो अपने धर्म से चूकूगा।"

फिर रात को मुझे बुलाकर कहने लगे "देखो हरिभाऊ, इस विषय मे छान-बीन करके तुम अपनी एक राय बना लो। इस तरह बिना सोचे-समझे किसीके लिए कुछ कहना ठीक नही है। इससे या तो उस व्यक्ति के प्रति अन्याय होता है या फिर प्रमाणाभाव में हम सच्चे होते हुए भी झूठे दीखने लगते हैं। फिर ऐसी बाते झूठ-मूठ भी उठा करती हैं। तिल का ताड भी बना दिया जाता है। ऐसे समय एक बार तो अपनी आखो को भी धोखा हो सकता है।" यह कहकर उन्होने आप-बीती सुनाई। उसी दिन उनके पास एक पर्चा शायद किसी इटैलियन का आया था जो उसने बापू को अपने एक पत्र के साथ भेजा था। पर्चे में लिखा था कि हिन्दुस्तान मे दो स्काउड्रल (बदमाश) हैं। एक अलवर के महाराजा, दूसरा गांधी। साथ के पत्र में लिखा था गाधीजी आप हैं तो पक्के 'स्काउन्ड्रल', पर हैं बडे सत्यवादी और सत्यप्रेमी। अत मुझे विश्वास है कि मैंने आपके लिए अपने पर्चे मे जो सत्य बात लिखी है उसकी अवश्य कद्र करेंगे।

मैं पढकर दग रह गया। बापूजी पर इतना भयकर व ऐसे धडल्ले से इल्जाम! दुनिया मे ऐसे आदमी भी हो सकते है?

मुझे स्तमित और अवाक देखकर बापू बोले—"इसने योही नही लिखा है। आखोदेखी रिपोर्ट के आधार पर लिखा है। तुम विश्वास करोगे ?"

अब तो मै सन्न रह गया। "बापू, आप क्या कहते है ? विश्वास करू ? ससार मे कोई भी इसपर विश्वास नही कर सकता। यह तो कोई राक्षस मालूम पडता है।"

"नही, ऐसी बात नही है। विलायत में मेरे खिलाफ जो प्रचार किया गया है उसका यह नमूना है। जब मैं गोलमेज परिषद में विलायत गया तो तत्कालीन वाइसराय विलिग्डन ने, खासतौर पर, ऐसी बातें ठेठ सम्राट् तक पहुचाई थी। और लोगो ने बहुत बुरा प्रचार किया। मशा उनकी यह थी कि लोगो पर मेरा प्रभाव न पडे। गाधी, जिसे लोग महात्मा मानते है, वह ऐसा बदमाश आदमी है, यह वे इंग्लैड के लोगो व सम्राट को जंचाना चाहते थे। कहा गया है कि आखोदेखी बाते है।

"और जानते हो, आखोदेखी क्या बात थी ?" "नही तो, मुझे तो कुछ भी पता नही है।

उन्होने किस्सा कहना शुरू किया, "डांडी–कूच के समय हमारे डेरे में एक तरफ स्वयसेवक और दूसरी तरफ कुटिया के आस-पास स्वयंसेविकाए सोती थी। स्वयसेविकाओ को मै अपने आस-पास सुलाता था। ज्यो-ज्यो अफवाहें आने लगी कि मेरी गिरफ्तारी जल्द ही होनेवाली है, लोगो की सतर्कता बढती जाती थी। वे किसी भी क्षण, खासकर रात में गिरफ्तारी हो जाने की आशका करते थे। एक रोज रात को पुलिस गिरफ्तारी के लिए आई। आहट पाकर लडकिया जाग गई और रोने लगी। मैं अपनी गोदी में एक का सिर रखकर तसल्ली दे रहा था। पुलिस अफसर ने सर्चलाइट से मुझे इस अवस्था में देखा। उसने बम्बई के गवर्नर तक को रिपोर्ट पहुचाई कि रात में गांधी को हमने लडकियो के साथ इस तरह देखा। पुलिस अफसर अग्रेज था। गवर्नर भी अग्रेज। उन्होने इसका अनर्थ करके मेरे विरुद्ध खूब प्रचार

करवाया। इसलिए मैं कहता हूं कि ऐसी बातों पर बिना छान-बीन किये राय बना लेना गलत है। किसी के बारे में अनुकूल राय जल्दी बना लेना एक बार अच्छा है, पर बुरी राय बनाने में हमेशा सुस्ती करनी चाहिए।"

: ३८ :

बापू की विलक्षणता

१९४८ में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ था। प्रान्तों से चुने हुए सत्याग्रहियों की सूची बापू की मंजूरी के लिए जाती थी। अजमेर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से मैं सूची लेकर गया। मेरे नाम का जिक्र चला। बापू ने कहा, "तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, तुम्हें जेल नहीं जाना चाहिए।" मैंने कहा "बापू, मेरा स्वास्थ्य ऐसा तो जरूर है कि जेल जा सकूं।" बापू इसपर कुछ बिगड़े। त्यौरी चढ़ाकर कहा "आखिर तुम्हें जेल जाने का ऐसा मोह क्यों है?" मैं जवाब दे नहीं पाया था कि कोई और बात निकल पड़ी। मैंने बापू से कहा "मुझे आपकी बात का जवाब देना है, सो कोई दूसरा समय दें तो अच्छा रहे।" बापू ने फिर जरा त्यौरी चढ़ाकर कहा "जवाब देना चाहते हो? जानते हो, (मुस्कराकर) मैं सेनापति हूं। सिपाही सेनापति को जवाब नहीं दे सकता। उसका काम आज्ञा मानना है। अच्छा, फिर मिल लेना।"

बापू के कमरे के बाहर निकलने पर महादेवभाई ने कहा आज-कल बापू डिक्टेटर की स्पिरिट में हैं। आपका 'जवाब' देना शब्द उन्हें अच्छा नहीं लगा।

थोड़ी देर के बाद पूज्य बा ने कहा, "हरिभाऊ, आज बापू ने तुम्हें अपने साथ भोजन करने के लिए कहा है। बापू के पास ही बैठना।"

अब तो मुझे चिन्ता होने लगी। बापू अहिंसात्मक नश्तर लगाया करते थे। जब किसीको कोई कड़ी बात पिलानी होती तो पहले अपने

स्नेह, वात्सल्य से उसे नहला दिया करते थे। पास बैठना तो वात्सल्य का चिन्ह था; पर मै समझ गया कि बापू मुझसे कुछ कठिन काम चाहते है। मैंने अक्सर देखा था कि बापू को जब किसीसे कोई त्याग या कष्ट सहन कराना होता था तो पहले वे उसकी प्रशसा करते थे। 'यग इडिया' मे जब किसी व्यक्ति की प्रशसा बापू करते थे तो हम लोग आपस में मजाक मे कहा करते थे कि अब बापू इनसे कुछ बडा काम लेना चाहते हैं। अतएव मै किसी कठिन परीक्षा की तैयारी करके भोजन करने गया। बापू ने अपनी थाली मे से कुछ प्रसादी दी। अब तो मै मन में बहुत डर गया। बापू ने धीरे-से बडे प्यार-भरे शब्दो मे मुस्कराते हुए पूछा "हा, तुम मुझे कुछ जवाब देना चाहते थे न ?" मैने कहा "बापू, जवाब नही, सफाई देना चाहता था।"

"हा–हा, सफाई तो दे सकते हो।"

"बापू, आपने पूछा था कि तुम्हे जेल जाने का ऐसा मोह क्यो है? सो मोह की बात नही, पर भला जिस लडाई के आप सेनापति हो, उसमे आपके एक सिपाही की इच्छा नाम लिखाने की हो तो इसमे आश्चर्य क्यो होना चाहिए ? नाम न दे तो अलबत्ता उसके लिए लज्जा की बात होगी। मै आपका सिपाही तो हू ही। मेरी सेवाए आपके सिपुर्द है। अब आप आज्ञा दें कि मुझे जेल नहीं जाना है, बाहर रहना है तो मुझे यह शिरोधार्य है। सिपाही के नाते मै आपकी आज्ञा का उल्लघन नही कर सकता। इसमें मेरी क्या गलती है ?"

"हा, सो तो ठीक है, तुम्हारा नाम तो मेरे पास पहले ही से लिखा पडा है। जब मैने आमरण उपवास करने वालो की सूची मागी थी उसमें तुम्हारा नाम आया था। मुझे याद है। तभी से तुम्हारा नाम सूची में है। मगर बात यह है कि इस समय मैं कुछ खास लोगो को, जिन्होने सत्याग्रह व अहिसा को समझ लिया है, प्रत्येक प्रान्त मे पीछे रखना चाहता हू, जिससे वे लडाई को गलत रास्ते न जाने दे। तुम तो कई बार जेल हो आए हो। फिर जब मै जरूरत समझूगा तो तुम जैसो को झोकते हुए थोडे ही हिचकनेवाला हू।"

एक बार दिल्ली मे मेरे पूज्य पिताजी के साथ हम लोग पूज्य बापू के दर्शनार्थ गये। वे शायद शिमला या सीमाप्रान्त से आये थे और डा० शौकत अन्सारी के बगले पर (राजपुर रोड) ठहरे थे। काम में बहुत व्यस्त थे। बाहर जाने की तैयारी चल रही थी। हमारे बहुत देर तक इन्तजार करने के बाद महादेवभाई ने भीतर बुलाया और बुलाते ही चेतावनी दी "बापू आज बहुत थक गये हैं। ज्यादा बात मत करना।" महादेवभाई की यह चेतावनी मुझे अच्छी नही लगी, क्योकि मैं बापू से बिना काम न कभी मिलता था, न कोई चिट्ठी लिखता था। मिलने पर भी मिनटों में काम की बाते कर लेता था। उस दिन तो मुझे कोई खास बात भी नही करनी थी। हा, जब-जब बापू दिल्ली आते, पिताजी जरूर उनसे मिलते। उन्हे मिलाने के लिए ही मै साथ आया था। बापू मेरी इस बात से वाकिफ थे, फिर पिताजी साथ थे। मैंने देखा कि महादेवभाई की सख्ती उन्हें भी अच्छी नही लगी। उनकी आखो मे कुछ सुर्खी हो आई, इतने ही मे पिताजी ने व मैंने उन्हे प्रणाम किया। मैंने कहा "पिताजी आपको प्रणाम करने आये थे। बस, अब जाते हैं।" बापू ने दृढता के स्वर मे कहा "नही नही, अभी बैठो। महादेव ने तो अपना कर्तव्य किया है। मैं कुछ इतना थका नही हू।"

"लेकिन हमें कोई खास बात भी तो नही करनी थी।" किन्तु फिर भी उन्होने कुछ देर तक बिठाके थोडी बात-चीत के बाद ही जाने दिया। मुझे ऐसा लगा मानो बापू महादेवभाई की सख्ती का परिमार्जन कर रहे हो।

× × ×

इसी समय का एक दृश्य याद आ रहा है। बापू नीबू का पानी पी रहे थे। कोई दूसरा चम्मच प्यारेलालजी ने उस दिन उन्हें दे दिया, रोजमर्रा वाला नही था। सामान बाधने की जल्दी में कही इधर-उधर रख दिया था। बापू पीछे पड गये वही चम्मच लाओ, उसे दूसरी जगह रख ही कैसे दिया ? मुझे यह याद नही पडता कि बाद मे क्या

हुआ। बापू अपने जीवन व व्यवहार की छोटी-से-छोटी बात का भी कितना आग्रह रखते थे, इसका यह नमूना है। वे जीवन को नियम व अनुशासन-बद्ध बनाने मे विश्वास रखते थे। अपने सम्बन्ध की थोडी भी गफलत, सुस्ती, भूल को वे क्षम्य नही समझते थे। उदार व क्षमाशील भी ऐसे कि बडे-से-बडा कुसूर भी माफ कर देते और छोटी-छोटी बातो पर भी बडा जोर दिया करते।

एक बार एक अत्यन्त निकटवर्ती ने लिखा- बापू, मेरा मन सिगरेट पीने को बहुत होता है। मैं मन को बहुत समझाता हूं, किन्तु मानता नही। तो अब क्या करू ?

बापू उन्हे बहुत सयमी और समझदार आदमी मानते थे। उन्होने जवाब दिया तुम सिगरेट जरूर पियो और कोई पूछे तो यह कहो कि बापू ने मुझे इजाजत दी है।

बापू ने देखा कि इतना सयमशील व्यक्ति यदि अपने मन से हार रहा है तो अवश्य बात उसके काबू के बाहर हो रही है। उसे छोड देना ही अच्छा है। यदि मेरे सकोचवश न पिये, या दूसरे उसको बुरा कहे तो अपने हवाले की प्रेरणा करके उलटा बल दिया। जहा साधारण आदमी के मन में घृणा पैदा हो सकती थी वहा बापू की इस अनुकम्पा की कोई तुलना नही है।

इसी तरह एक बार एक शख्स ने सतति-नियमन के लिए कृत्रिम उपायो के अवलम्बन करने को अनुमति मागी। बापू को उनकी असहाय अवस्था पर दया आई और कहा- तुमसे नही रहा जाता है तो भले कृत्रिम उपाय काम मे लो, परन्तु यह समझो कि तुम अच्छा काम नही कर रहे हो। इससे किसी दिन तुम्हे उससे छूटने की शक्ति मिल जायगी।

: ३९ :

प्रज्ञावान बापू

लाहौर कांग्रेस के बाद नमक-कानून-भंग के रूप में सत्याग्रह का आयोजन हो रहा था। उसपर विचार करने के लिए साबरमती या अहमदाबाद में शायद कांग्रेस महासमिति की मीटिंग होनेवाली थी। उसमें सम्मिलित होने के लिए पण्डित मोतीलालजी नेहरू अहमदाबाद जा रहे थे। अजमेर स्टेशन पर हम कुछ कांग्रेस-कार्यकर्ता उनसे मिले। नमक-सत्याग्रह की बात चल पडी। हम लोग कुछ कल्पना नही कर सके थे कि नमक-कानून तोडा किस तरह जायगा। बापूजी ने उसकी कोई तफसील नही बताई थी। हमने पण्डितजी से पूछा। उन्होने कहा "गांधीजी की सनक है। हमारी तो खाक समझ में नही आता कि नमक-कानून कैसे तोड़ेंगे और उसका सरकार पर कितना दबाव पड़ेगा। कही टांय-टांय फिस न हो जाय! पर भाई, गांधीजी हैं। उनका कुछ कह नहीं सकते। नई-नई बाते निकालते हैं और जादू-सा कर दिखाते हैं। उनसे मिलने पर ही सब बातें मालूम हो सकती है।"

साबरमती जाकर हम क्या देखते हैं कि पण्डितजी नमक-कानून-सत्याग्रह के कायल हो गये और उसके पक्ष मे लोगो को समझा रहे हैं। गांधीजी का कायदा था कि जब कोई बात उन्हें सूझती थी तो पहले वे अपने दिमाग में उसका खाका खीच लेते थे। यह खाका भी कई दिनो के मथन के बाद ऐन वक्त पर अच्छा खिचता था। तब वे अपने निकटवर्तियो के सामने उसका चित्र रखते, उनकी आलोचना सुनते, शंकाओ का समाधान करते और अन्त को अकेले पड जाने की जोखिम

उठाकर भी उसपर डटे रहते। नमक-कानून-भग की सफलता का उतना चित्र शुरू मे लोगो के दिमाग मे नही बैठा था, जितना बाद मे दिखाई दिया। लोग कहने लगे थे कि गाधीजी के छठी इन्द्रिय है, जो कठिन-से-कठिन परिस्थिति मे उन्हे अचूक उपाय सुझाती है। एकाग्रता व तन्मयता का खूब अभ्यास हो जाने से ऐसी स्फूर्ति उदय होती रहती है। प्राचीन ऋषि-मुनियो के लिए कहा जाता है कि जब कोई कठिन समस्या पेश आती थी तो वे ध्यान करते थे और सारा रहस्य उनकी समझ मे आ जाता था या उसका हल मिल जाता था। हजरत मुहम्मद पैगम्बर के लिए भी यही कहते हैं कि जब कोई नया मसला पैदा होता था व सामान्य बुद्धि से वे उसे हल नही कर पाते थे तो बेहोश हो जाते थे, वही आती थी और वे उसका जवाब देते जाते थे। मन की एकाग्रता, ध्यान-चिन्तन की पराकाष्ठा के फलस्वरूप प्राप्त समाधि की ही यह एक अवस्था है, जो यान्त्रिक नही, प्रज्ञा का एक रूप या अग है। गाधीजी को यह सहज साध्य हो गई थी।

: ४० :

परदुःखकातरता

छोटी-बडी गलतिया सबसे होती हैं। दूसरे लोग गलतियो पर फटकार बताते हैं, सजा देते हैं, गाधीजी दया व प्यार की वृष्टि कर उसे शुद्ध करते थे। जिसने हृदय खोलकर उनसे सबकुछ कह दिया उसके रक्षक व पथदर्शक बन जाते थे। यदि हम भूल या दोप से दब जाते हो, हिम्मत टूटती हो तो खुद अपनी गलतियो का हवाला देकर ढाढस बधाते।

एक बार सावली (चादा जिला, मध्यप्रदेश) मे गांधी-सेवा-सघ का पहला सम्मेलन हुआ। सभा की कार्रवाई चल रही थी। बापूजी ब्रह्मचर्य, संयम या चरित्र-शुद्धता पर कुछ कह रहे थे। एक मदरासी

सज्जन उठे व एकाएक कहने लगे, "बापूजी, मैं पापी हूं, मैंने बड़ा दोष किया है।" शायद अपने दोष का कुछ बयान भी करना चाहते थे। बापू उनके सहसा हृदयोद्गार से इतने द्रवित हुए कि उन्हें शांत करके बोले मानो बरबस उनके मुंह से निकला "भाई, बैठ जाओ, तुम ही नहीं, हम सब पापी हैं।" उस समय उनका गला मानो करुणा से भर आया हो। बात यह थी कि उन भाई ने ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया था और वह टूट गया था या तो वर्धा में या शायद खुद सावली में ही। इसकी वेदना से वह व्याकुल हो उठे थे, लेकिन बापू ने उतनी ही दयार्द्रता से उन्हें छाती से लगा लिया।

: ४१ :

जीत में हार

१९२८-२९ में हम लोगों ने अजमेर में कांग्रेस का चुनाव लड़ा। कांग्रेसियों में आपस में ही चुनाव हुआ। मतदाता के लिए खादी पहनने की शर्त थी। दोनों दलों के मिलाकर १४,००० सदस्य बने। इतने खादीधारी तो थे नहीं। हमारे प्रतिपक्षियों ने तो थोड़े से कपड़े बनवा लिये व बारी-बारी से पहनाकर वोट दिलाने लगे। उनकी यह चालाकी पकड़ी गई। चुनाव रद्द हुआ। मैंने बापूजी को इसकी सूचना दी। बापूजी ने फौरन मुझसे पूछा—"तुम्हारे पक्षवालों ने तो कोई गलती नहीं की है?" मेरे साथी कुछ घबरा गए, क्योंकि ऐसी खबर लगी थी कि बावजूद हमारी कोशिश के कुछ लोगों ने कुछ अनियमितता कर डाली थी। सवाल हुआ कि बापू को क्या जवाब दिया जाय? मैंने कहा, जो जैसी बात हुई हो, बापू को लिख दी जाय। जहां तक मुझे याद है, अनियमितता तत्कालीन कांग्रेस के विधान या परिपाटी के अनुसार तो नहीं थी, पर बापू के मान-दण्ड से वह अनुचित ही हो सकती थी। मैंने उत्तर दिया आपके स्टैंडर्ड से हम

लोग भी अवश्य कुछ दोषी है, काग्रेस के स्टैंडर्ड से नही गिर रहे है। कई लोग नए है जो कभी काग्रेस की रीति-नीति से भी वाकिफ नही है, फिर आपके उच्च आदर्श की तो बात ही दूर है, परन्तु हमारा सच्चे दिल से यही प्रयत्न है कि आपकी परीक्षा मे पास हो।" हम दिल मे घबरा जरूर गए थे। बापू ने हमारी कठिनाई व परेशानी को समझ लिया। हमे लिखा--चिन्ता करने की जरूरत नही, सच्चे दिल से शुद्धि का प्रयत्न करते रहो।

अन्त मे काग्रेस कार्यसमिति ने हमारे पक्ष मे फैसला दिया--काग्रेस के नियम की दृष्टि से उसे नियमित ठहराया। जब रिटर्निग आफीसर श्री किदवई साहब ने इसपर मुझे मुबारकबादी दी तो मैने कहा यह कानूनी विजय है, नैतिक नही। अत हम जीत जाने पर भी बधाई के पात्र नही है। हमारे पक्ष के स्टैंडर्ड का ऐसा असर किदवई साहब पर पडा था कि हमारे खिलाफ जो शिकायते हमारे प्रतिपक्षी उन्हे भेजते थे, वे मुझे जाच के लिए भेज देते थे।

: ४२ :

राष्ट्रीय झंडे की इज्जत

अजमेर मे एक बार हमने खादी व ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी की। उस सिलसिले में किले की एक बुर्ज पर ऊचा राष्ट्रीय झडा फहराया। श्रद्धेय जमनालालजी के हाथो उसका उद्घाटन हुआ। तत्कालीन चीफ कमिश्नर या कमिश्नर का आर्डर मन्त्रियो (सर्व श्री कृष्णगोपाल गर्ग व बालकृष्ण गर्ग) के नाम आया कि दो घटे के अन्दर झंडा उखाड़ लो, नही तो कानूनी कार्रवाई की जायगी। उन दिनो सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित था व बापू का सख्त हुक्म था कि बिना उनकी इजाजत कोई कानून न तोडे। अब हम बड़े पेसोपेश मे पड गए। दो घटे के अन्दर बापू से सम्पर्क करके उनसे इजाजत नही ली जा सकती, इधर ऐसे

अपमानजनक हुक्म को मानने के लिए कोई तैयार नहीं था। मानने से मानो आत्मघात होता था, अजमेर-मेरवाडा की जनता की जागृति पर ठंडा पानी डाल देना था। इस धर्म-संकट मे हमने एक कसौटी अपने सामने रक्खी। कोई भी निर्णय हम करते हैं तो एक न-एक तरह की गलती होती है। हमे वह फैसला करना चाहिए वह गलती करनी चाहिए, जो हमें वहादुरी की तरफ कष्ट-सहन की तरफ ले जाती हो, न कि वह जो हमे वुजदिली के गड्ढे मे गिराती हो। हमारे मंत्रियो ने झंडा उतारने से इन्कार कर दिया। फल-स्वरूप ४-४ महीने कडी कैद पाई व जेल मे भी काफी कष्ट सहा।

अव सवाल हुआ कि वापू क्या कहेगे? मैने वापू को पत्र लिखा कि सिपाही के नाते हम लोगो को आपसे विना पूछे सत्याग्रह नही करना चाहिए था, परन्तु जो परिस्थिति यहा थी वह उन्हे सविस्तर लिख दी गई। उसमे वहादुरी की तरफ गलती करना ही हमने उचित समझा। अव आपके फैसले की राह देख रहे है।

वापू ने इसका जवाव तो उस समय कुछ न दिया, अलवत्ते 'हरिजन' में हमारे पक्ष को पुष्ट किया। फिर जव मैं मिला तो पूछा "वापू, आपने हमारे प्रश्न का उत्तर नही दिया। हमने गलती की या ठीक किया?" उन्होने कहा मेरी समझ से तो तुम लोगो ने अनुशासन का भग किया है, परन्तु तुम्हारी मजवूरी को मैने समझ लिया। गलती तुमने सही दिशा मे की है, इसलिए मैने अपने ढग से 'हरिजन' मे तुम लोगो के हाथ मजबूत किये है। जवाव इसलिए नही दिया कि तुम लोगो के खिलाफ उसका दुरुपयोग हो सकता था।

× × ×

एक वार आश्रमवासी मेरे एक मित्र की लडकी से एक मित्र के विवाह करने की इच्छा हुई। वे जानना चाहते थे कि लडकी भी चाहती है या नही। लडकी वालिग थी। मुझे इसमे कुछ हर्ज नही मालूम हुआ और मैने लडकी से पूछ लिया। जव उसके अभिभावको को यह वात मालूम हुई मुझे तो कुछ छिपाना भी नही था तो उन्हे एतराज हुआ

कि हरिभाऊ ने बिना हमारी इजाजत के क्यों बातचीत की। वे इस सबध को बिलकुल नापसन्द करते थे। बापू ने मुझसे पूछा तो मैंने सरल भाव से बता दिया कि घर की लड़की-सी समझता हूं, सो पूछ लिया। बापू को भी यह ठीक नहीं लगा। उन्होने पूछा यदि शकुन्तला (मेरी लडकी) से कोई इस तरह तुमने बिना पूछे ऐसी बातचीत करे तो तुमको पसन्द होगा ?

"जैसी आत्मीयता मैं इस लडकी के पालकों में रखता हूं वैसा ही कोई व्यक्ति पूछे तो मुझे कोई आपत्ति न होगी, क्योंकि उनमे दुर्भावना या सन्देह का कोई कारण नहीं हो सकता।"

"तो मैं कहता हू, तुम पिता होने के नाते शकुन्तला के प्रति अपने कर्तव्य से च्युत होते हो और इस भ्रम मे तुमने इस लडकी से बातचीत करके•• का अपराध ही किया है। तुम्हे उनसे क्षमा मांगनी चाहिए। •••को काफी दुख हुआ है।"

"मुझे यह कल्पना नही थी कि इसमे उन्हे एतराज होगा और दुख होगा। यह तो स्वप्न मे भी मुझे नहीं सूझा था। मैं तो उलटा यह समझता था कि ऐसे मामलो मे माता-पिता या पालक सीधे बात नहीं करते, मुझ जैसे मित्रो से ही पुछवाते हैं, अतः मुझे इसमे कोई आशका नही हुई थी। अब यदि उन्हें दुख हुआ तो मेरा धर्म है कि उनका दुख जिस तरह दूर हो वह करू। केवल माफी ही नहीं, वे और भी कुछ चाहे तो करने में मुझे दिक्कत न होगी।"

"सो तो मैं जानता हू, तुम्हारा कोई दुर्भाव होता तो मैं दूसरी तरह से पेश आता। कई बार सद्भावना से भी हम ऐसे काम कर जाते हैं, जिनपर आपत्ति हो सकती है, अपने प्रियजनो को दुःख पहुच सकता है। अतः मनुष्य को बहुत सावधानी से बरतना चाहिए। जैसा हम अपने साथ चाहते है वैसा ही व्यवहार हम दूसरो के साथ करे यह नियम सामान्यत ठीक है; परन्तु सच्चा नियम यह है कि हम दूसरो से आजादी से कम ले और दूसरो को अपने से ज्यादा आजादी लेने देने की प्रवृत्ति रक्खें। अच्छा जाओ . से बातचीत करो।"

मैंने उनसे माफी मागी। वे सकुचा गए। बोले जैसा बापू ने समझा है, ऐसा कुछ मुझे नही लगा है। तुम्हारे बातचीत करने पर मुझे इतना नही लगा जितना इस सबध को मै नापसन्द करता हू। तुम्हारी बातचीत से मुझे व्यर्थ की परेशानी हो गई। मुझसे तुम पहले बात करते तो मैं तुम्हे सारी परिस्थिति बता देता। खैर!

मैंने इससे यह सबक लिया कि केवल अपनी ही दृष्टि से सोच लेना काफी नही है, सामनेवाले को इसमें क्या आपत्ति हो सकती है, उसपर क्या असर पड सकता है, फिर वह हमारा आत्मीय ही क्यो न हो, यह सोच लेना भी जरूरी है। जो मनुष्य अपनी मर्यादाओ को समझकर चलता है, वह खुद भी शाति पाता है व दूसरो को भी अशाति से बचा लेता है।

: ४३ :

संयम की शिक्षा

बापू स्त्री-जाति के आधुनिक शकराचार्य ही हुए है। उन्होने बहनो को निर्भय, तेजस्वी, अग्रसर, सेवा-परायण बनाने का जितना प्रयत्न किया है उतना शायद ही किसी पुरुष ने अबतक किया हो। जब वे बहनो के विषय में बोलते थे तो ऐसा लगता था मानो किसी स्त्री की ही व्याकुल आत्मा बोल रही है। वे स्त्रियो के साथ स्त्रीत्व का अनुभव करते थे ऐसा कहे तो अत्युक्ति नही। धीरे-धीरे उन्होने भारत की स्त्रियो को पुरुष के समकक्ष ही नही, आगे बढा दिया। सामाजिक क्षेत्र में केवल विधवा-विवाह ही नही, परित्यक्ता-विवाह, असवर्ण-विवाह आदि का भी रास्ता खोल दिया व चौडी सडके बना दी। बाल-विधवाओ के लिए तो उन्होने यहा तक कह दिया कि ये तो कुवारी ही है। इनका विवाह तो पहला विवाह समझकर ही करना चाहिए। विवाहिताओ को भी उन्होने पुनर्विवाह की अनुमति दे दी है ऐसी एक घटना याद आ रही है।

१९२७ की बात है। राजस्थान के एक सम्भ्रान्त परिवार की वधू ने पहले पति को छोडकर दूसरे से शादी कर ली। पहले पतिवालो ने बापूजी से शिकायत की या शायद लडकी ने ही बापू से दाद-फरियाद की थी। बापूजी ने जांच का काम मुझे सौपा। मुख्य मुद्दे बापू ने ये बताये कि लडकी क्यो दूसरा विवाह करने पर उतारू हुई और कि आया उसने अपनी मर्जी से शादी की है? दोनो पक्ष के लोगो से सारा किस्सा सुनकर मैने पूर्व पति को समझाया कि इस लडकी को वापस बुलाने में कोई सार नही है। दोनो मे से किसीको भी शाति नही मिल सकती। मुझे जहातक याद है वह लडकी दूसरे पति के ही यहा रहने गई थी। बापू मानते थे कि यदि स्त्री पर अत्याचार होते रहते है या वह छोड दी जाती है तो उसे दूसरा विवाह करने का अधिकार होना चाहिए और पुरुषो को मुकदमा चलने व जेलखाने की जोखिम उठाकर भी ऐसी स्त्रियो से विवाह कर लेना चाहिए। वे सयम और ब्रह्मचर्य के पुजारी थे, परन्तु साथ ही अत्याचार और जिल्लत की जिंदगी को भी कभी बरदाश्त नही करते थे। विवाहित जीवन मे भी वे सयम व ब्रह्मचर्य पर जोर देते थे। वे कहते थे कि जो जितनी अधिक स्वतत्रता चाहता है उसे उतना ही अधिक सयमी होना चाहिए। वास्तव मे सयम ही मनुष्य को स्वतत्रता देता है, असयम से वह उसका अधिकार खोता जाता है।

: ४४ :

रुपये का सद्व्यय

एक बार एक धनी व्यक्ति ने बातचीत में बापू को बताया कि वे सरकार से इनकम-टैक्स बचा लेते है। वह अग्रेजी शासन का जमाना था। कई हजार रुपए बचे थे। बापू सुनकर कुछ देर चुप हो रहे। उनकी मुख-मुद्रा से ऐसा लगा, मानो उन्हे यह पसद नही आया। उन

सज्जन से शायद उन्होने ऐसी आशा न रखी हो। परन्तु सज्जन ने साफ दिल से बापू से कह दिया था, अत उनकी रक्षा करना भी उन्हें शायद जरूरी मालूम हुआ। उन्होने कहा "तो फिर ऐसा करो कि यह रुपया अच्छे काम में लगा दो।" उन्होने फौरन मजूर कर लिया।

: ४५ :

सरल-सादे आचार्य राय

एक दफा वर्धा मे आचार्य राय बापू से मिलने आये। वे एक साधु-सन्त कोटि के पुरुष थे। उनके त्याग की सीमा नही थी। विज्ञान के खासकर रसायन-शास्त्र के पीछे उन्होने विवाह तक नही किया। कहते थे "मैने कैमिस्ट्री से शादी करली है। अब दो पत्नियो को नही रख सकता।" सरलता बच्चे के माफिक, सादगी मजदूरो को भी मात करती थी। एक बार मै कलकत्ते मे उनके दर्शन के लिए गया तो वे साइन्स युनिवर्सिटी के विशाल भवन के एक पिछले कोनेवाले कमरे में मामूली खटिया पर बैठे थे। यदि पास में नारियल हुक्का पडा हुआ होता तो कोई उन्हे मछुआ ही समझता। बापू की सादगी मे फिर भी एक शान रहती थी, परन्तु आचार्य राय ठेठ देहाती मालूम होते थे। सरोजनीदेवी मिलने आई तो इस तरह लिपट गये जैसे बच्चा मा से लिपट जाता है। श्री बसन्तकुमार मजूमदार सपत्नीक आये तो दोनो को एक-एक चाटा रसीद किया, दोनो के सिर आपस मे टकरा दिये और दोनो के कन्धो पर चढ बैठे। फिर हम सबको अपनी रसायनशाला दिखाने ले गये उसमे जर्मनी, इगलैड आदि से लौटे उनके बडे-बडे वैज्ञानिक शिष्य काम कर रहे थे। एक-एक चपत लगाकर व किसीको चूमकर बडे गौरव और वात्सल्य के साथ उनका परिचय कराते जाते थे। कहा "These are my chemical babies" (ये मेरे रासायनिक या रसायनशास्त्रीय बच्चे है)।

जब बापू से वर्धा में मिलने आये तो मामूली-सा बिस्तरा और एक थैला साथ था। सुबह आते ही बापू के कमरे में दाखिल हुए। बापूजी को वे महत्ताजी (महात्मा का बंगाली अपभ्रंश) कहकर संबोधन किया करते थे। बातचीत खतम होने के बाद उन्होंने मुझसे चाक मिट्टी मांगी। मुझे ताज्जुब हुआ कि चाक मिट्टी का क्या करेंगे? मैंने पूछा, "स्कूल का 'चाक' चलेगा?" उन्होंने कहा—"हान्हा, जरूर।"

मैं अपनी जिज्ञासा रोक न सका। पूछा "चाक का आप क्या करेंगे?"

"मैं चाक मिट्टी से ही दातुन करता हूं। यही मेरा मंजन है।"

"आप तो बंगाल कैमिकल के जनक हैं। उसका दन्त-मंजन ही काम में क्यों नहीं लाते हैं?"

मेरे मुंह की ओर कौतुकपूर्ण आंखों से देखते हुए उन्होंने कहा—"सो तो ठगविद्या है। वह सब व्यापार है। असली चीज यही चाक मिट्टी है। दांत इसीसे साफ होता है। पैसा कमाने के लिए दन्त-मंजन में थोड़ी खुशबू व कुछ एंटिसेप्टिक (कृमिनाशक) मिला देते हैं। मैं तो चाक मिट्टी से दांत मांजता हूं।"

मैंने आनंद, आश्चर्य व आदर के साथ उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया।

: ४६ :

मेरी अहिंसा की कमी

बापू ने मुसलमानों का हृदय जीतने के लिए जितने प्रयास किये उतने अंग्रेजों का हृदय जीतने के लिए नहीं। अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ उन्होंने हिला दी, फिर भी अंग्रेज उनको मानते व कद्र करते थे। मुसलमानों के लिए उन्होंने जान की बाजी लगा दी तब भी आखीर के कुछ दिनों को छोड़कर लीगी मुसलमान उन्हें अपना दुश्मन नं० १

मानते थे। मैंने इस स्थिति पर कई बार मन मे विचार किया। बापू की अहिसा-साधना मे कसर है या लीगी मुसलमान ही इतने जड हैं ? मुझे ऐसा लगा कि बापू जिस भाषा में अपना प्रेम और सद्भाव उनपर प्रकट करते थे उसे वे समझ नही पाते थे। बापू अपने दृष्टि-बिन्दु पर अपने ढग से उन्हे लाना चाहते थे, जबकि वे अपने दृष्टि-बिन्दु की पूर्ति में बापू से अपने ढग से सहयोग चाहते थे। इससे बापू की हालत—मुर्गी अपनी जान से गई, पर मिया के मन ही न भाई जैसी हो रही थी। मुझे ऐसा लगा कि बापू को यदि प्रेम व सद्भावना ही दर्शाना है तो वह उन्हीकी भाषा में, उन्हीके ढग से जिसे वे समझ सके, क्यो न दर्शावें। प्रेम-पात्र जिस भाषा को समझे वह बोलना अच्छा है या हमारी भाषा, हमारा ढग प्रेम-पात्र पर लादना अच्छा है। प्रेम-प्रदर्शन का सच्चा व सरल तरीका क्या है ? प्रेम-पात्र की भावनाओ का व सुविधाओ का ज्यादा खयाल रक्खें या अपना ? मैंने बापू को लिखा—मुझे आश्चर्य होता है कि मुसलमान क्यो नही अबतक आपपर विश्वास लाते हैं। ज्यो-ज्यो आप उनके लिए छटपटाते हैं त्यो त्यो वे और छिटकते तथा शकित होते जाते है। आपके प्रेम व सद्भावना में तो कोई कसर नही मालूम होती; परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि उसके प्रकाशन के प्रकार या ढग में कोई भूल आपसे हो रही है। आप अपनी भाषा छोडकर जो भाषा उनकी समझ में आती हो वैसी बोले तो क्या हर्ज है ?

उन्होने उत्तर दिया यह मेरी अहिंसा की साधना की कमी को बतलाता है। उनकी भाषा में बोलने का मतलब यह हुआ कि उनकी मागे मजूर कर लू। उनके जिस सिद्धान्त को मै दूषित व हानिकर मानता हूं उसे कैसे मजूर कर सकता हू ? मुझमें अभी और आग चाहिए, जिससे उनके हृदय पिघल सकें।

अन्त को जाकर उनके बलिदान ने यह अधूरा काम पूरा कर दिया।

: ४७ :

सेठ जमनालालजी

जमनालालजी कुछ विश्वासो में अपनी बात के पक्के थे कुछ संस्कार इतने प्रबल थे कि वे बापू की भी नही सुनते थे। उनसे भिड पडते थे। उन्होने एक नियम-सा कर रखा था कि दान या सहायता उसी संस्था को या व्यक्ति को देनी चाहिए जिसका काम खुद हमने देखा हो, जिसका सिद्धान्त, राजनीति हमे पसन्द हो। जो लोग बिना खोज-पूछ व सोच-विचार किये मुह देखकर तिलक लगाते है उनकी वे हमेशा आलोचना किया करते थे व अपने मित्रो तथा साथियो के पात्रापात्र का विचार करके दान देने की शिक्षा दिया करते थे। इससे कभी-कभी ऐसा हो जाता था कि सहायता समय पर नही मिल पाती थी, जिससे कभी काम बिगड जाता था, कभी कार्यकर्त्ता हताश हो जाते थे। एक बार शायद नागपुर के या पूना के तिलक-विद्यालय की सहायता का सवाल दरपेश था। वहा के कार्यकर्त्ता जमनालालजी से मिल चुके थे और उन्होने शायद यह जवाब दिया था कि मै संस्था देखकर या अधिक चर्चा करके फिर निश्चय करूगा। उन्हे पैसे की बहुत तगी थी। वे बापूजी के पास पहुचे। बापू को ऐसा लगा कि सहायता तुरन्त मिलनी चाहिए।

वर्धा में प्रातःकाल घूमते हुए बापू ने जमनालालजी से जिक्र किया। छूटते ही सेठजी उबल पडे "आपको लोग समझा देते है और आप झट से उनकी बाते मान लेते है। वे लोग पहले मुझसे मिले थे। मैने कहा था कि ठहरकर कुछ कर सकूगा। उन्हे आपको सताने की क्या जरूरत थी ?"

बापू (अपने उद्वेग को दबाते हुए) "हां, सो तो ठीक है, लेकिन आपके निश्चय करने तक तो उनका काम चौपट हो जायगा। हमें कार्यकर्त्ताओं की सुविधा और कठिनाइयों का ज्यादा खयाल रखना चाहिए, बनिस्बत अपनी जांच-पड़ताल के। कार्यकर्त्ता यदि ईमानदार है तो फिर हर समय ज्यादा सख्ती से नुकसान होता है।"

सेठजी (झल्लाकर) "लेकिन मैं अपना तरीका नहीं बदल सकता। आपकी बात दूसरी है। आपके जितनी शक्ति मुझमें नहीं। मैं आपकी चाल चलने लगूं तो 'कौवा चले हंस की चाल' वाली गत होगी।"

उन्होंने बापू को मूखा-सा जवाब दे तो दिया, पर पीछे से, मुझे जहां तक याद पड़ता है, कुछ रुपये भिजवा दिये थे। सेठजी जितने ऊपर से मस्त थे भीतर से उतने ही दयार्द्र थे।